

प्रकाशकीय

सहापटित राहुल सांकृत्यायन जी द्वारा अनुदित धम्मपट का यह अनुवाद पुन छपा देखने की बलवती इच्छा बाल्यकाल से थी । आज अनेक वर्षों के बाद अपनी इच्छा की पूर्ति हुई देख अतीव प्रसन्नता हुई ।

इस संस्करण को सुन्दर व आर्पण बनाने के लिये भरसक प्रयत्न किया पर कहाँ तक सफलता हुई यह तो विजजन ही बतलायेंगे ।

३०—१—५७

रिसालदार पार्क

भिक्षु प्रज्ञानन्द

बुद्धविहार, लखनऊ.

प्रस्तावना

(प्रथम सस्करण)

त्रिपिटक (= त्रिपिटक) अधिकांशतः भगवान् बुद्धके उपदेशोंका संग्रह है । त्रिपिटकका अर्थ है, तीन पिटारी । यह तीन पिटक हैं—
सुत्त (= सूत्र), विनय और अभिधम्म (= अभिधर्म) ।

१ सुत्तपिटक निम्नलिखित पाँच निकायों में विभक्त है—

१. दीघ-निकाय	३४ सुत्त (= सूक्त या सूत्र)
२. मज्झिम-निकाय	१५२ सुत्त
३. सयुत्त-निकाय	१६ सयुक्त
४. अंगुत्तर-निकाय	११ निपात
५. खुद्दक-निकाय	१५ प्रथ

खुद्दक-निकायके १५ प्रथ यह हैं—

(१) खुद्दकपाठ	(६) थेरी-गाथा
(२) धम्मपद	(१०) जातक (५५० कथायें)
(३) उदान	(११) निहैस (चुल्ल-, महा-)
(४) इतिवुत्तक	(१२) पटिसम्भिमडामग्ग
(५) सुत्तनिपात	(१३) अपदान
(६) विमान-अशु	(१४) बुद्धवम

(१)

(७) पत पत्थु (१५) परियाफिटक

(८) धर-गाया

७ विनयपिटक मिस्र भागोंमें विभक्त है—

१—मुत्तविमंग—

(१) मिक्खु-विमंग	} या {	(पारायिक
(२) मिक्खुनी-विमंग		पाबिनिय

२—सुखक—

(१) महाप्रमा

(२) सुखप्रमा

३—परिहार

८ अमिधम्मपिटक में निम्नलिखित सात प्रश्न हैं—

- | | |
|---------------|----------|
| १ धम्ममंगली | ५ कपावरु |
| २ विमंग | ६ समक |
| ३ धानुक्कया | ७ पट्टान |
| ४ पुमासपम्मति | |

धम्मपट्ट (= पमपट्ट) त्रिपिटकक सुदकनिकाय विभागक पंद्रह प्रश्नोंमेंसे एक है। इसमें भगवान् बुद्धक मुगठे समय समय पर निकली ४२३ उपदेश-भाषाओंका संग्रह है। चीनी सिद्धिती आदि भाषाओं क पुगन अनुवादोंक अतिरिक्त वलमान काखकी मुनिपाकी मनी सम्य भाषाओंमें इतक अनुवाद मिलते हैं, अंग्रेजीमें ठो मात्र एक अनुवाद है। भारतकी अम्य भाषाओंकी तरह हमारी हिन्दी भी इसमें किनीस पीछे नहीं है। जहाँ तक मुक्त मालूम है हिन्दीमें धम्मपट्ट के अभी तक पाँच अनुवाद हो चुके हैं जिनके लेखक हैं—

- | | |
|--------------------------|-------------------------------|
| १ श्री सूर्यकुमारधमा | हिन्दी (१९८५) |
| २ मदनत कन्धमखि महास्वविर | हिन्दी और पाली दोनों (१९८६) |

३. स्वामी सत्यदेव परिव्राजक हिन्दी (बुद्धगीता)

४. श्री विष्णुनारायण हिन्दी (सं० १९८५)

५. पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय पाली-हिन्दी (१९३२ ई०)

पाँच अनुवादोंके होते छठेकी क्या आवश्यकता ?—इसका उत्तर आप पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी और महायोधिसभा के मंत्री ब्रह्मचारी देवप्रियसे पृच्छिये । मैंने बहुत ननु-नच किया, किन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी । ६ फरवरीमें ८ मार्च तक मैं सुल्तानगंज (भागलपुर) में “गंगा”के पुरातत्त्वांकके सम्पादनके लिये श्री धूपनाथ सिंहका अतिथि था । सम्पादनका काम ही कम न था, उसपरसे वहाँ रहते दो लेख भी लिखने पड़े । उसी समय इस अनुवाद में भी हाथ लगा दिया । जो अंश बाकी रह गया था, उसे किताब को प्रेसमें देनेके बाद समाप्त किया । इस तरह “बुद्धचर्या” की भाँति “धम्मपद” में भी जल्दीसे काम लिया गया है । इससे पुस्तकमें प्रफ. ही-की गलतियाँ नहीं रह गई, बल्कि जल्दीमें किये अनुवादकी पुनरावृत्ति न करनेसे अनुवादकी भाषाको और सरल नहीं बनाया जा सका, इन त्रुटियोंका मैं स्वयं दोषी हूँ ।

ग्रंथमें पाँचले बारीक टाइटप में बाढ और उस स्थानका नाम दिया है, जहाँ पर उक्त गाथा बुद्धके मुखसे निकली, दाहिनी ओर उस व्यक्ति का नाम है, जिसके प्रति या विषयमें उक्त गाथा कही गई । धम्मपद की अष्टक्या (=टीका) में हर एक गाथाका इतिहास भी दिया हुआ है, सक्षिप्त करके उसे देनेका विचार तो उठा, लेकिन समयभाव और ग्रंथविस्तारके भयसे वैसा नहीं किया जा सका ।

सुत्तपिटकके प्राय. १०० सूत्र, और विनयके कुछ अशको मैंने अपनी बुद्धचर्यामें अनुवादित किया है । भारतीय भाषाओंमें पाली ग्रंथोंका सबसे अधिक अनुवाद बंगलामें हुआ है । जातकोंका बंगला अनुषाठ कई जिल्लोंमें है । श्रीयुत् चारुचन्द्र वसुने धम्मपद का पालीके माथ संस्कृत और बंगलामें अनुवाद किया है (इस ग्रंथसे

सुझ प्रवने काममें बड़ी सहायता मिली है, और इसके लिए मैं पाठशाळा का आभारी हूँ) । बैंगलाके बाद दूसरा नम्बर मराठी का है जिसमें आचार्य ध्यानन्द कौशाम्बीके प्रबंधके अतिरिक्त सारे वीथमिकाय का भी अनुवाद मिलता है । इस क्षेत्रमें हिन्दीका तीसरा नम्बर शाना सज्जाकी बात है । मैंने आगेते तीन चतुर्मासोंमें मजिस्त्रमिकाय महाबन्गा और खुल्लवन्गा—इन तीन प्रबंधोंको हिन्दी में अनुवाद करनेका निश्चय किया है । यदि दिग्गजापा न हुई, तो आशा है उस वर्षके अन्तमें पाठक मजिस्त्रम-मिकाय को हिन्दी रूप में देख लेंगे ।

गुरुकुलमें मन्दत चन्द्रमणि महास्वकिरने ही सब प्रथम बम्पफुका मूखपाली सहित हिन्दी अनुवाद किया था । उन्होंने अनुवादकी एक प्रति भेज दी थी और सदाकी मति इस काममें भी उनसे बहुत प्रोत्साहन मिला तदर्थ पूरा महास्वकिरका मैं कृतज्ञ हूँ ।

प्रयोग

७- १६३३

राहुल सांकृत्यायन

द्वितीय संस्करण

३ वर्ष पूर्व यह पुस्तक छपी थी कुछ ही वर्षोंबाद यह संस्करण अयाप्त हो गया अब नया संस्करण निकल रहा है । इसका संशोधन मैंने कर दिया है । मिहू भी ध्यानन्द का इसका भेद है जो कि सर्वदा नवीन यह प्रथम एवं अतिसे प्रभावित हो रहा है ।

लालनन्द

राहुल सांकृत्यायन

३ - १ - १६

वर्ग-सूची

पृष्ठ

१—यमकवर्गो	१	१४—वृद्धवर्गा	८२
२—अप्यमादवर्गो	११	१५—सुखवर्गो	९०
३—चित्तवर्गो	१६	१६—पियत्रवर्गो	९६
४—पुष्पवर्गा	२१	१७—कोधवर्गो	१०१
५—बालवर्गो	२८	१८—मलवर्गो	१०७
६—पंडितवर्गो	३५	१९—धम्मद्वयवर्गो	११५
७—अर्द्धन्तवर्गा	४२	२०—मग्नवर्गो	१२२
८—सदृशवर्गा	४७	२१—पकिष्णकवर्गो	१२९
९—पापवर्गो	५४	२२—निरयवर्गो	१३५
१०—दंष्ट्रवर्गो	६०	२३—नागवर्गा	१४१
११—जरावर्गा	६७	२४—तशहावर्गो	१४८
१२—अत्तवर्गो	७२	२५—भिमखुवर्गो	१६०
१३—लोकवर्गो	७७	२६—ब्राह्मणवर्गो	१७०
		गाथा-सूची	१८६
		शब्द-सूची	१६७

नमो तस्मै भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्य

धम्मपदं

१—यसकवग्गो

स्थान—श्रावस्ती

व्यक्ति—चक्रुपाल (थेर)

१—मनोपूर्वङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमयाः ।
अनसा चे पट्टुठेन भासति वा करोति वा ।
ततो 'नं दुक्खमन्वेति चक्कं'व वहतो पद ॥१॥

(मन.पूर्वङ्गमा धर्मा मनःश्रेष्ठा मनोमया
मनसा चेत्प्रदुष्टेन भासते वा करोति वा ।
तत एनं दुःखमन्वेति चक्रमिव वहतःपदम् ॥१॥)

अनुवाद—सभी धर्मों (= कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों, या सुख दुःख आदि अनुभवों) का मन अग्रगामी है, मन (उनका) प्रधान है, (कर्म) मनोमय हैं । जब (कोई) सदोष मनसे (यात) बोलता है, या (काम) करता है, तो

बाहन (बैस पाइ) के पैरों को जैसे (रम का) पहिना अनुगमन करता है (बैस ही) उसका शुभ अनुगमन करता है ।

आश्रयी

महकुवडडी

२—मनो पुम्बङ्गमा धम्मा मनोसेट्ठा मनोमया ।
मनसा चे पसम्मन भासति वा करोति वा ।
ततो नं सुसमन्येति ध्याया' ष अनपायिनी ॥२॥

(मनःपूर्वङ्गमा धर्मा मनःअप्य मनोमया ।
मनसा चत् प्रसम्मन भासते वा करोति वा ।
तत एनं सुसमन्येति ध्यायेषामपायिनी ॥२॥)

अनुवाद—सभी धर्मों का मन अग्रगामी है मन प्रधान है। (धर्म) मनोमय है। यदि (कोई) बन्धु मन से बोधता वा करता है तो (कभी) न (साथ) बोधनेवाली ध्याया की तरह सुख उसका अनुगमन करता है ।

आश्रयी (अक्षय)

दुहतिस्स (बेर)

३—अकोञ्छि मं अयपि म अचिनि म अहासि मे ।
ये च त् उपमहन्ति बेरं तेस न सम्मति ॥३॥

(अकोञ्छीत् मां अयधीत् मां अचिपीत् मां अहार्यीत् मे ।
ये च तत् उपमहन्ति बेरं तेषां न सम्मति ॥३॥)

अनुवाद—'मुझे नहीं चिन्ता' 'मुझे मारा' 'मुझे हरा दिया' 'मुझे चूट दिया' (ऐसा) जो (मर्मे) बाँधते हैं उनका बेर कभी शान्त नहीं होता ।

४-अकोच्छ्रि मं अबाध म अजनि म अहासि मे ।

ये त न उपनयहन्ति वेर तेसूपसम्मति ॥४॥

(अक्रोशीत् मां अवधीत् मा अजैपीत् अहार्पीत् मे ।

ये तत् नोपनहन्ति वैरं तेपूपशाम्यति ॥४॥)

अनुवाद—‘मुझे गाली दिया’० (ऐसा) (मनमें) नहीं रखते
उनका वैर शान्त हो जाता है ।

श्रावस्ती (जेतवन)

काली (यक्खिनी)

५-न हि वेरेण वेरानि सम्मतीध कुदाचनं ।

अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तो ॥५॥

(न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह कदाचन ।

अवैरेण च शाम्यन्ति, एष धर्म. सनातनः ॥५॥)

अनुवाद—यहाँ (संसार में) वैर से वैर कभी शान्त नहीं होता, अवैर
से ही शान्त होता है, यही सनातन धर्म (= नियम) है ।

श्रावस्ती (जेतवन)

कोसम्बक भिक्खू

६-परे च न विजानन्ति मयसेत्थ यमामसे ।

ये च तत्थ विजानन्ति ततो सम्मन्ति मेघगा ॥६॥

(परे च न विजानन्ति वयमत्र यंस्याम. ।

ये च तत्र विजानन्ति ततः शाम्यन्ति मेघगाः ॥६॥)

अनुवाद—अन्य (अज्ञ लोग) नहीं जानते, क हम इस (संसार)
से जानेवाले हैं । जो इसे जानते हैं, फिर (उनके)
मनके (सभी विकार) शान्त हो जाते हैं ।

भाष्येति

असक्तकाय महाकाय

७-सुमानुपस्ति बिहरस्त इन्द्रियेषु असंबुतं ।
 मोक्षमन्धि धमसतञ्जु कृतीत हीमवीरियं ।
 त वे पसहति मारो धातो एकस्य व दुर्धस्य ॥७॥

(सुममनुपस्थन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु असंबुतम् ।
 मोक्षनेप्राप्त्यर्थं कृतीत हीमवीर्यम् ।
 न वे प्रसहति मारो धातो बृद्धमिव दुर्धसम् ॥७॥)

अनुवाद—(वा) सुम ही सुम देखते बिहरता है इन्द्रियोंमें संयम
 न करनेवाला होता है मोक्ष में मात्रा को नहीं आका
 आकाही धीर उद्योगहीन होता है; उसे मार (= मन्त्री
 दुष्प्राप्तियों) (जैसे ही) पीकित करता है जैसे दुर्ध
 दुर्ध को हरा ।

८-असमानुपस्ति बिहरस्त इन्द्रियेषु सुसंबुतं ।
 मोक्षमन्धि ध मसतञ्जु सखं मारद्ववीरियं ।
 त वे मप्ससतहि मारो धातो सेसं 'व पद्यत ॥८॥

(असममनुपस्थन्तं विहरन्तं इन्द्रियेषु सुसंबुतम् ।
 मोक्षनं च माप्राप्त्यर्थं भर्त्सा मारद्ववीर्यम् ।
 न वे न प्रसहते मारो धातोः शैलमिव पर्वतम् ॥८॥)

अनुवाद—जा असम देखते बिहरता इन्द्रियोंको संयम करता
 मोक्षमें मात्रा को आका आकावात् तथा उद्योगी है
 उसे शिखामप वर्त को जैसे बालु नहीं दिखा सकता
 (जैसेही) मार नहीं (दिखा सकता) ।

आचरती (जेतवन)

देवदत्त

६-अनिक्कसावो कासावं यो वत्थं परिदहेस्सति ।

अपेतो दमसच्चेन न स कासावमरहति ॥६॥

(अनिक्कपायः कापायं यो वत्थं परिधास्यति ।

अपेतो दमसत्याभ्यां न स कापायमर्हति ॥६॥)

अनुवाद—जो (पुरुष) (राग, द्वेष आदि) कपायों (=मलों) को बिना छोड़े कापाय वत्थो को धारण करेगा, वह संयम-सत्त्वसे परे हटा हुआ (है), और (वह) कापाय (वत्थ) का अधिकारी नहीं है ।

१०-यो च वन्तकसावस्स सीलेसु सुसमाहितो ।

उपेतो दमसच्चेन स वे कासावमरहति ॥१०॥

(यश्च वान्तकपायः स्यात् शीलेषु सुसमाहितः ।

उपेतो दम-सत्याभ्यां स वै कापायमर्हति ॥१०॥)

अनुवाद—जिसने कपायोंको वमन कर दिया है, जो आचार (= शील) से सुसम्पन्न, तथा संयम-सत्त्व से संयुक्त है, वही कापाय (वत्थ) का अधिकारी है ।

राजगृह (वेणुवन)

सजय

११-असारे सारमतिनो सारे चासारदस्सिनी ।

ते सार नाधिगच्छन्ति मिच्छासङ्कुप्पगोचरा ॥११॥

(असारे सारमतय सारे चासारदर्शिनीः ।

ते सारं नाधिगच्छन्ति मिथ्यासङ्कल्पगोचराः ॥११॥)

अनुपाद जो अगारको गार समझते हैं, और गारको अगार, वह पूरे राहस्यमें संगम (पुण्य) गारको नहीं प्राप्त करते ।

१२—साररुच्यं च सारतो अथवा असाररुच्यं असारतो ।
ते सारं अधिगच्छन्ति सम्माराद्धूपगोचरा ॥१२॥

(सारं च सारतां सारया असारं च असारताः ।
ते सारं अधिगच्छन्ति स्वयम्-राहस्य-गोचराः ॥१२॥)

अनुपाद—जो सारको सार जानते हैं अगारको अगार, वह सारके राहस्यमें संगम (पुण्य) गारको प्राप्त करते हैं ।
आराती (बोधात्मक) न्य (वेद)

१३—यथागारं बुद्धिर्न पृथ्ठी समतिविज्भति
एवं अभावितं चित्तं रागो समतिविज्भति ॥१३॥

(यथागारं बुद्धिर्न पृथ्ठीः समतिविज्भति ।
एवं अभावितं चित्तं रागोः समतिविज्भति ॥१३॥)

अनुपाद—जैसे ठीकसे न पाये पर में बुद्धि पुण जाती है । जैसे ही अभावित (= न संबन्ध विषय) चित्तमें राग पुण जाता है ।

१४—यथागारं बुद्धिर्न पृथ्ठी न समतिविज्भति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्भति ॥१४॥

(यथागारं बुद्धिर्न पृथ्ठीः न समतिविज्भति ।
एवं सुभावितं चित्तं रागो न समतिविज्भति ॥१४॥)

अनुपाद—जैसे ठीकसे पाये परमें बुद्धि नहीं पुणती वैध ही सुभावित चित्त में राग नहीं पुणता ।

राजगृह (वेणुवन)

चुन्द (सूकारिक)

१५-इध सोचति पेच्च सोचति

पापकारी उभयत्थ सोचति ।

सो सोचति सो विहञ्जति

दिस्वा कम्मकिलिट्टमत्तनो ॥१५॥

(इह शोचति प्रेत्य शोचति पापकारी उभयत्र शोचति
स शोचति स विहन्यते दृष्ट्वा कर्म क्लिष्टमात्मनः ॥१५॥)

अनुवाद—यहाँ (इस लोक में) शोक करता है, मरने के बाद शोक करता है, पाप करने वाला दोनो (लोकों) में शोक करता है। वह अपने मलिन कर्मों को देखकर शोक करता है, पीड़ित होता है।

श्रावस्ती (जेतवन)

धम्मिक (उपासक)

१६-इध मोदति पेच्च मोदति

कतपुञ्जो उभयत्थ मोदति ।

सो मोदति सो पमोदति

दिस्वा कम्मविसुद्धिसत्तनो ॥१६॥

(इह मोदते प्रेत्य मोदते कृतपुण्य उभयत्र मोदते ।
स मोदते स प्रमोदते दृष्ट्वा कर्मविसुद्धिमात्मनः ॥१६॥)

अनुवाद—यहाँ प्रसुदित होता है, मरने के बाद प्रसुदित होता है, जिसने पुण्य किया है, वह दोनों ही जगह प्रसुदित होता है। वह अपने कर्मों की शुद्धता को देखकर सुदित होता है, प्रसुदित होता है।

आवृत्ती (चेतवन)

देवदत्त

१७—इय सप्यति पञ्च सप्यति,
पापकारी उभयस्य सप्यति ।
पापं मे कसन्ति सप्यति,
भीम्यो सप्यति बुगतिङ्गतो ॥ १७ ॥

(इह सप्यति प्रेत्य सप्यति पापकारी उभयस्य सप्यति ।
पापं मे कृतमिति सप्यति भूयस्तप्यति बुगतिङ्गता ॥१७ ॥)

अनुवाद—यहाँ संकष्ट होता है मरकर संकष्ट होता है पापकारी
दोनों काह संकष्ट होता है । “मिनि पाप किया है”—यह
(सोच) संकष्ट होता है । बुगति को प्राप्त हो और भी
संकष्ट होता है ।

आवृत्ती (चेतवन)

सुमथा देवी

१८—इय मन्वति पञ्च नन्वति,
कतपुञ्जो उभयस्य मन्वति,
पुञ्ज मे कसन्ति मन्वति,
भीम्यो नन्वति सुगतिङ्गत ॥१८॥

(इह मन्वति प्रेत्य मन्वति कतपुञ्ज उभयस्य मन्वति ।
पुण्यं मे कृतमिति मन्वति भूयो मन्वति सुगतिङ्गतः ॥१८ ॥)

अनुवाद—यहाँ आनन्दित होता है मरकर आनन्दित होता है ।
कितने पुण्य किया है यह दोनों काह आनन्दित होता है ।
“मिनि पुण्य किया है”—यह (सोच) आनन्दित होता
है सुगति को प्राप्त हो और भी आनन्दित होता है ।

श्रावस्ती (जेतवन)

दो मित्र भिन्न

१९—वहुं॑पि चे सहितं भासमानो,
न तक्करो होति नरो पमत्तो ।
गोपो 'व गावो गणय परेसं,
न भागवा सामञ्जस्स होति ॥१९॥

(बहुमपि संहितां भाषमाणः,
न तत्करो भवति नरः प्रमत्तः ।
गोप इव गा गणयन् परेषां ,
न भागवान् श्रमणस्य भवति ॥१९॥

अनुवाद—चाहे कितनी ही संहिताओं (= वेदों) का उच्चारण करे,
किन्तु प्रमादी धन (जो) नर उसके (अनुसार)
(आचरण) करनेवाला नहीं होता, (वह) दूसरे की
गाथों को गिननेवाले ग्वालेकी भाँति श्रमणपन (= सन्यासी
पन) का भागी नहीं होता ।

२०—अप्पम्पि॑ चे सहितं भासमानो,
धम्मस्स होति अनुधम्मचारी ।
रागञ्च दोसञ्च पहाय मोह,
सम्मप्पजानो सुविमुत्तचित्तो ।
अनुपादियानो इध वा हुंरं वा,
स भागवा सामञ्जस्स होति ॥२०॥

(अल्पामपि संदिता मायमाणो,
धर्मस्य भवत्यनुधमचारी ।
रागं च द्वेषं च प्रहाप मोहं
सम्बद्धमजानन् सुविमुक्तचित्तः
अनुपादान इह वाऽमुत्र वा
स भागवान् धामण्यस्य भवति ॥२०॥)

अनुवाद—बाहे अल्पमात्र ही संदिता का भाव्य करे, किन्तु यदि वह धर्म के अनुसार आचरण करके पाखा हो राग द्वेष और मोह को त्यागकर धर्मी प्रकार सचेत और धर्मी प्रकार मुक्तचित्त हो वहाँ और वहाँ (दोनों जगह) बढोत्तरेवाला न हो। (तो) वह अमरत्व का धामी होता है।

१—अमरत्व समाप्त

२—अप्पमादवग्गो

कौशाम्बी (घोषिताराम)

सामावती (रानी)

२१—अप्पमादो अमत-पदं पमादो मच्चुनो पदं ।

अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥१॥

(अप्रमादोऽमृतपदं प्रमादो मृत्यो. पदम् ।

अप्रमत्ता न म्रियन्ते ये प्रमत्ता यथा मृता ॥१॥)

२२—एत विसेसतो जत्त्वा अप्पमादम्हि पण्डिता ।

अप्पमादे पमोदन्ति अरियाणं गोचरे रता ॥२॥

(एवं विशेषतो ज्ञात्वाऽप्रमादे पण्डिता ।

अप्रमादे प्रमोदन्त आर्याणां गोचरे रता ॥२॥)

२३—ते ध्यायिनी साततिका निच्चं दह्ल्ल-परवकमा ।

फुसन्ति धीरा निब्बाणं योगक्खेमं अनुत्तरं ॥३॥

(ते ध्यायिन साततिका नित्यं दृढपराक्रमा ।

स्पृशन्ति धीरा निर्वाणं योगक्षेमं अनुत्तरम् ॥३॥)

अनुवाद—प्रमाद (= आचरण) व करना अमृत पद ही धीर प्रमाद (करवा) अनुपपत् । अप्रमादी (जैसे) नहीं मरते जैसे कि प्रमादी मरते हैं । संबित भोग अप्रमाद के विषय में इस प्रकार विरह्यत जान आर्षोक्त आचरण में रह हो अप्रमादमें प्रसूचित होते हैं । (आ) पद निरन्तर प्रानरत किये यह पराङ्गी है यह धीर अनुपम भोग-व्येम (आम्ब मंगल) बाजे निर्वाचने प्राप्त करते हैं ।

राजगृह (वेणुवन)

कुम्भजोसक

२४—उट्ठानवतो

सतिमतो

सुधिकम्मस्स निसम्मकारिणो ।

सञ्जसस्स च धम्मजीविनी

अप्यमरास्स यत्तोऽमिवत्ति ॥४॥

(उत्थानवतः स्मृतिमत शुचिकर्मज्ञो निशम्य-अरिणः ।
संयतस्य च धर्मजीविनीऽप्रमत्तस्य यथोमिवत्ति ॥४॥)

अनुवाद—(जो) उद्योगी सकेत शुचि कर्मज्ञा तथा सोचकर
अम करने बाबा है धीर संयत धर्मज्ञानार जीविका बाबा
एवं अप्रमादी है, (यसका) मर जाता है ।

राजगृह (वेणुवन)

कुम्भजोसक (बेर)

२५—उट्ठानेन 'प्यमादेन सञ्जमेन इमेन च ।

शीर्षं कयिराम मेधावी य ओघो नाभिकीरति ॥५॥

(उत्थानेनाऽप्रमादेन संयमेन इमेन च ।

शीर्षं शीर्षा कुम्भजो मेधावी य नाभिकीरति ॥५॥)

अनुवाद—मेधावी (पुरुष) उद्योग, अप्रमाद, संयम और ठम द्वारा
(अपने लिए ऐसा) द्वीप बनावे, जिसे वाद नहीं डुवा सके ।

जेतवन

बालनक्खतघुट्ट (होली)

२६—प्रमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुर्मेधिनो जना ।

अप्रमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं 'व रक्खति ॥६॥

(प्रमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुर्मेधसो जन ।

अप्रमादं च मेधावी धनं श्रेष्ठमिव रक्षति ॥६॥)

अनुवाद—सूखे दुर्मेध जन प्रमादमें लगते हैं; मेधावी श्रेष्ठ धन को
भाँति अप्रमाद की रक्षा करता है ।

२७—मा प्रमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्धवं ।

अप्रमत्तो हि भायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं ॥७॥

(मा प्रमादमनुयुञ्जीत मा कामरतिसंस्तवम् ।

अप्रमत्तो हि ध्यायन् प्राप्नोति विपुलं सुखम् ॥ ७ ॥)

अनुवाद—मत प्रमादमें फसो, मत कामो में रत होओ, मत काम
रति में लिप्त हो । प्रमादरहित (पुरुष) ध्यान करते महान्
सुखको प्राप्त होता है ।

जेतवन

महाकस्सप (धेर)

२८—प्रमाद अप्रमादेन यदा नुदति पण्डितो ।

पञ्जापासादमारुह्य असोको सोकिनिं पजं ।

पब्बतट्ठो 'व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ॥८॥

(प्रमादमप्रमोदन यदा भुवति परिद्धतः ।
प्रज्ञापसावमारुह्य अशाक शीकिर्नीमजाम् ।
पर्वतस्थ इव भूमिस्थान् भीरो वास्तान् अवेक्षते ॥८॥)

अनुवाद—परिद्धत अथ प्रमाद से प्रमाद को इयता है या निःशोक हो शोकाकुल यथा का प्रशास्त्री मासाव पर चक्र—
जैसे पर्वत पर जहा (पुष्प) भूमिपर अवेक्षितों का देखता है (बैस ही) बीर (पुष्प) अज्ञाविर्षों को (देखता है) ।

वेतवन

दो मित्र मित्र

२६—अप्यमसो पमसोसु सुसोसु बहुजागरो ।

अबल्लस्तं 'व सीघस्तो हिस्वा याति सुमेघसो ॥९॥

(अप्यमसः प्रमत्तेषु सुप्तेषु बहुजागरः ।

अबल्लस्तमिद शीघ्राश्वो हिस्वा याति सुमेघाः ॥९॥)

अनुवाद—अमाविर्षों से बीचमें प्रमादी सातों से बीचमें बहुत जापनेवाला अश्वी बुद्धिवाला (पुष्प)—बैस मित्रों को (पीछे) जोर शीघ्रवानी बोधा (प्राये) यथा जाता है—(बैस ही जाता है) ।

वैशाखी (पूरुगार)

महावी

३०—अप्यमादेन मधवा बेबानं सेट्टस्तं गतो ।

अप्यमार्धं पमंसन्ति पमादो गरहितो सदा ॥१०॥

(अप्यमादेन मधवा बेबानां श्रेष्ठतां गतः ।

अप्यमार्धं पमंसन्ति प्रमादो गरहितः सदा ॥१०॥)

प्रज्ञापसावमारुह्याम्योप्य- शोचतो अनान् ।

भूमिष्ठानि च शैलस्यः सर्वान् प्रहोऽनुपश्यति ॥

—योगमाध्य १४७

अनुवाद—अप्रमाद (=आलस्य रहित होने) के कारण इन्द्र देव-
ताओं में श्रेष्ठ बना। अप्रमाद की प्रशंसा करते हैं, और
प्रमाद की सदा निन्दा होती है।

जेतवन

कोई भिक्षु

३१—अप्रमादरतो भिक्षु पमादे भयदस्सि वा ।

सञ्जोजनं अणुं थूलं उह अग्गीव गच्छति ॥११॥

(अप्रमादरतो भिक्षु प्रमादे भयदर्शी वा ।

संयोजनं अणुं स्थूलं दहन् अग्निरिव गच्छति ॥११॥)

अनुवाद—(जो) भिक्षु अप्रमाद में रत है, या प्रमाद से भय खाने-
वाला (है), (वह), आग की भाँति छोटे मोटे बंधनों को
जलाते हुए जाता है ।

जेतवन

(निगम-वासी) तिस्र (थेर)

३२—अप्रमादरतो भिक्षु पमादे भयदस्सि वा ।

अभब्बो परिहाणाय निब्बाणस्सेव सन्तिके ॥१२॥

(अप्रमादरतो भिक्षु प्रमादे भयदर्शी वा ।

अभव्य परिहाणाय निर्वाणस्यैव अंतिके ॥१२॥)

अनुवाद—(जो) भिक्षु अप्रमाद में रत था प्रमाद से भय खाने-
वाला है, उसका पतन होना सम्भव नहीं, (वह) निर्वाण-
के समीप है ।

२—अप्रमादवर्ग समाप्त

३---चित्तवग्गो

वाचिष फर्षत

मेधिव (बेर)

३३—फम्बन घपल चित्त कुरक्कस कुन्निवारय ।

उञ्जु करोति मेधावी उजुकारो'व तेजनं ॥१॥

(स्वंबन घपल चित्त कुरिक्कसं कुन्निवार्यम् ।

उञ्जु करोति मेधावी उजुकार इव तेजनम् ॥१॥)

अनुवाद—(इस) चंक्कस घपल कुर-रक्कस कुर-विषार्थ चित्तको मेधावी
(पुङ्गप पसी मक्कर) धीपा करता है जैसे वाच बवाने-
वाचा वाच करे ।

३४—वारिजो'व पसे चित्तो मोकमोक्त उज्जमती ।

परिफम्बति'व चित्तं मारघेय्यं महातवे ॥२॥

(वारिज इव स्पल्ले चित्त उज्जमोक्त उज्जमूतम् ।

परिस्फुटत इदं चित्तं मारघेय्यं महातुम् ॥२॥)

अनुवाद—बैये क्क्यायप घ विक्कसकर क्क्यप पर पेंक धी गई मक्कवी
(= वारिज) लक्कपवाती है, (बैये ही) मार (राग

द्वेष; मोह) के फन्देसे निकलने के लिए यह चित्त (तदफङ्गता है) ।

श्रावस्ती

कोई

३५—दुर्निग्रहस्स लघुनो यत्थ कामनिपातिनो ।

चित्तस्स दमथो साधु चित्तं दन्तं सुखावहं ॥३॥

(दुर्निग्रहस्य लघुनो यत्र-काम-निपातिन ।

चित्तस्य दमनं साधु, चित्तं दान्तं सुखावहम् ॥३॥)

अनुवाद—(जो) कठिनाईसे निग्रह योग्य ; शीघ्रगामी , जहाँ चाहता है वहाँ चला जानेवाला है ; [ऐसे] चित्तका दमन करना उत्तम है, दमन किया गया चित्त सुखप्रद होता है ।

श्रावस्ती

कोई उत्कण्ठित भिद्ध

३६—सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्थ कामनिपातिन ।

चित्तं रक्खेय्य मेधावी, चित्तं गुत्तं सुखावहं ॥४॥

(सुदुद्दसं सुनिपुणं यत्र-कामनिपाति ।

चित्तं रक्खेत् मेधावी, चित्तं गुप्तं सुखावहम् ॥४॥)

अनुवाद—कठिनाई से जानने योग्य , अत्यन्त चालाक , जहाँ चाहे वहाँ ले जानेवाले चित्तकी , बुद्धिमान् रक्षा करे ; सुरक्षित चित्त सुखप्रद होता है ।

श्रावस्ती

मंघरक्खित (येर)

३७—दूरङ्गमं एकचर असरीरं गृहासयं ।

ये चित्तं सञ्जमेस्सन्ति मोक्खन्ति मारवन्धना ॥५॥

(दूरगम एकधर अशरीर शुद्धायम् ।
ये चित्त मयस्यन्ति मुष्यन्ते मारकम्भनात् ॥५॥]

अनुवाद—दूरगामी अकेला विचरनेवाले निराधर शुद्धात्मी
(इस) चित्तका ; जो सधम करेंगे , वह मारक मन्वन्ते
मुक्त हाने ।

आवस्ती

चिच्छाय (वेर)

१८—अनवच्छित्तचित्तास्त सद्गम्भ अविजानतो ।
परिप्लवपसावस्त पञ्चा न परिपूरति ॥६॥

(अनवस्थित चित्तस्य सद्गम्भं अविजानतः ।
परिप्लवपसावस्त्य मज्ञा न परिपूर्यते ॥६॥)

अनुवाद—जिसका चित्त अचलित नहीं था सन्धे धर्मको नहीं जानता
जिसका [चित्त] मसक्तताहोम है धरें मज्ञा (—परम
ज्ञान) नहीं मित्त सकता ।

२९—अनवस्मृतचित्तस्त अनन्वाहृतचेतसो ।
पुञ्जपापपहीणस्त नस्ति जागरतो भयं ॥७॥

(अनवस्मृतचित्तस्य अनन्वाहृतचेतसः ।
पुञ्जपापपहीणस्य नास्ति जागरता भयम् ॥७॥)

अनुवाद—जिसका चित्त मज्जरहित है ; जिसका मन अकम्प्य है ; जो
पाप-गुरुप-विहीन है ; वस सकय रहनेवाले (पुञ्ज) के धिरे
भय नहीं ।

श्रावस्ती

पाँच सौ विपर्ययक भिक्षु

४०—कुम्भूपम कायमिम विदित्वा
 नगरूपम चित्तमिदं ठपेत्वा ।
 योधेय मार प्रजायुधेन
 जित च रक्त्वे अनिवेसनो सिया ॥८॥

(कुम्भोपमं कायमिम विदित्वा
 नगरोपम चित्तमिदं ठपयित्वा ।
 युध्येत् मार प्रजायुधेन जित
 च रक्त्वे अनिवेशन स्यात् ॥८॥)

अनुवाद—इस शरीर को घड़े के समान (भगुर) जान, इस चित्त को गढ़ (=नगर) के समान कायम कर, प्रजारूपी हथियार से मार से युद्ध करे। जीतने के बाद (अपनी) रक्षा करे, (तथा) आसक्ति रहित होवे।

श्रावस्ती

पृथिवी तिरस (थेर)

४१—अचिर वत'य कायो पठवि अधिसेस्सति ।
 छुद्धो अपेतविञ्जाणो निरत्थ 'व कलिङ्गर ॥९॥

(अचिर वताय काय पृथिवी अधिशेष्यते ।
 क्षुद्रोऽपेतविज्ञानो निरर्थ इव कलिङ्गरम् ॥९॥)

अनुवाद—अहो ! यह तुच्छ शरीर शीघ्र ही, चेतनारहित हो निर्गन्धक काठ की भाँति पृथिवी पर पड़ रहेगा ।

कोसल देश

मन्द (गोप)

४२—दिसो विसं यत्तं कयिरा वेरो वा पन वेरिमं ।

मिच्छ्यापण्हितं चित्तं पापियो' न ततो करे ॥१०॥

(इत्थं चित्तं यत्तं कुर्यात् यं वा पुनः वैरिणम् ।

मिच्छ्यामण्हितं चित्तं पापीयांसं पनं ततः कुर्यात् ॥१०॥)

अनुवाद—कितनी ('हाथि) शत्रु शत्रु-की और बैरी बैरीकी करता है सूत्रे (मार्ग पर) जणा बिच बसणे अपिक्क श्रुतई करता है ।

कोसल देश

ओरम्य (बेर)

४३—न तं माता पिता कयिरा अज्जे चापि च श्रातका ।

सम्मपण्हितं चित्तं सेम्यसो' न ततो करे ॥११॥

(न तत् मातापितरौ कुर्यातां अन्ये चापि च श्रातिकाः ।

सम्यक्पण्हितं चित्तं श्रयांसं पनं ततः कुर्यात् ॥११॥)

अनुवाद—कितनी (मम्बाई) न माता-पिता कर सक्ये है न श्रुते माई-बन्धु । बसणे (अपिक्क) मम्बाई ठीक (मार्ग पर) जणा बिच करता है ।

३—विषयस्य समाप्त

४-पुष्पवग्गो

आषट्ठी

पाँच सौ भिच्

४४--को इमं पठवि विजेस्सति,
 यमलोकञ्च इम सदेवकं ।
 को धम्मपद सुदेसित,
 कुसलो पुष्पमिव प्पचेस्सति ॥१॥

(क इमां पृथिवीं विजेष्यते यमलोक च इद सदेवकम् ।
 को धर्मपद सुदेशित कुशल पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥१॥)

अनुवाद—देवताओं सहित उस यमलोक और इस पृथिवी को कौन
 विजय करेगा, सुन्दर प्रकार से उपदिष्ट धर्म के पदों को कौन
 चतुर (पुरुष) पुष्प की भाँति चयन करेगा ?

४५—सेखो पठवि विजेस्सति,
 यमलोकञ्च इद सदेवक
 सेखो धम्मपदं सुदेसित,
 कुसलो पुष्पमिव प्पचेस्सति ॥२॥

(शैक्षः पृथिवीं विजेष्यते यमलोक च इम सदेवकम् ।
 शैक्षो धर्मपद सुदेशित कुशल पुष्पमिव प्रचेष्यति ॥२॥)

अनुवाद—शैव^१ देवताओं सहित इस यमत्राक और वृषिनी को विजय करेगा। बहुत शत्रु सुन्दर प्रकार में उपदिष्ट धर्म के पदों को पुण्य की भाँति बचन करेगा।

भाष्यती

मरीचि (कम्महासिक पेर)

४ — फेणोपम कायमिमं विदित्वा
मरीचिधम्मं अभिसम्भुषामो ।
धेत्त्वान् मारस्य पपुष्कणानि
जइस्सन् मञ्चुराजस्स गच्छे ॥३॥

(फेणोपम कायमिमं विदित्वा
मरीचिधम्मं अभिसम्भुषामो ।
दित्त्वा मारस्य पपुष्पकाणि
अवशंमं मञ्चुराजस्य गच्छेत् ॥३॥)

अनुवाद—इस कामा को जेन क जमान काय या (मरु) मरीचिक के समान भाव; पाने को छोड़कर यमराज को फिर न देखने वाले बना।

भाष्यती

विदुषम

४७—पुष्कानि हेव पघिनस्त व्यासत्तमनसं परम् ।
सुत्तं गाम महोघोव मञ्चू भावाय गच्छति ॥४॥

^१निर्वाण के मार्ग पर जो उस प्रकार ध्यातु हो गये हैं कि फिर टनका उलझे फलन नहीं हो सकता ऐसे पुण्य को शैव कहते हैं। उनके तीन मेव हैं—श्रोतध्यापक, वृद्धवागाभी अनायासी।

(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम् ।
सुप्त ग्रामं महोद्य इव मृत्युरादाय गच्छति ॥४॥)

अनुवाद—(राग आदि के) फूलों के चुननेवाले आसक्तियुक्त मनुष्य-
को मृत्यु (वैसे ही) पकड ले जाती है, जैसे सोये गाँव को
बढ़ी वाढ़ ।

श्रावस्ती

पतिपृजिका

४८-पुष्पानि ह्येव पचिनन्तं व्यासक्तमनसं नरं ।
अतित्त येव कामेषु अन्तको कुरुते वसं ॥५॥
(पुष्पाणि ह्येव प्रचिन्वन्तं व्यासक्तमनसं नरम्
अतृप्त एव कामेषु अन्तक कुरुते वशम् ॥५॥)

अनुवाद—(राग आदि) फूलों को चुनते आसक्तियुक्त पुरुष को. (जब
कि अभी उसने) कामों में तृप्ति नहीं प्राप्त की, (तभी)
यम (अपने) वश में कर लेता है ।

श्रावस्ती

(कंजूम) कोसिय सेठ

४९-यथापि भमरो पुष्पं वण्णागन्धं अहेठयं ।
पलेति रसमादाय एवं गामे मुनी चरे ॥६॥
(यथापि भ्रमर पुष्पं वर्णागन्धं अघ्नन् ।
पलायते रसमादाय एव ग्रामे मुनिश्चरेत् ॥६॥)

अनुवाद—जिस प्रकार भ्रमर फूल के वर्ण और गंध को दिना हानि
पहुँचाये, रस को लेकर चल देता है, वैसे ही गाँव में मुनि
विचरण करे ।

भाष्ये

पाठिक (भाषीरक साधु)

५०—न परेत विलोमानि न परेत कताकत ।

अस्तनो'व अवेकस्येय्य कतानि अकतानि च ॥५०॥

(न परेण विलामानि न परेण कताकतम् ।

अस्तन एव अवेक्येत कतानि अकतानि च ॥५०॥)

अनुवाद—न दूधरों के विरोधी (अस) करे, न दूधरों के उल-बाल-
के खोब में रहे (आदमी को चाहिये कि यह) अस्ते
ही कृत (=किय) और अकृत (=न किये) की
(बात करे) ।

भाष्ये

(वृष्याधि) इषाचक

५१—यथापि रुधिर पुष्प वर्षावन्तं अगन्धकं ।

एव सुभासिता वाचा अफला होति अकुर्वन्तो ॥५१॥

(यथापि रुधिरं पुष्पं वर्षावत् अगन्धकम् ।

एव सुभासिता वाक् अफला भवति अकुर्वन्तो ॥५१॥)

अनुवाद—जैसे रुधिर और वर्षावत् (किन्तु) अगन्धित कृषि है वैसे
ही (कथनानुसार) वाचरथ न करनेवासे ही सुभासित
वाची भी अफला है ।

५२—यथापि रुधिरं पुष्प वर्षावन्तं अगन्धकं ।

एव सुभासिता वाचा सफला होति कुर्वन्तो ॥५२॥

(यथापि रुधिरं पुष्पं वर्षावत् सगन्धकम् ।

एव सुभासिता वाक् सफला भवति कुर्वन्तो ॥५२॥)

अनुवाद—जैसे रुचिर वर्णयुक्त और गन्धसहित फूल होता है, वैसे ही (वचनके अनुसार काम) करनेवालेकी सुभाषित वाणी सफल होती है ।

श्रावस्ती (पूर्वाराम)

विशाखा (उपासिका)

५३—यथापि पुष्करासिम्हा कथिरा मालागुणे बहू ।

एव जातेन सच्चनेन कत्तब्ब कुसलं बहू ॥१०॥

(यथापि पुष्पराशिः कुर्यात् मालागुणान् बहून् ।

एव जातेन मर्त्येन कर्त्तव्यं कुशलं बहु ॥१०॥)

अनुवाद—जिस प्रकार पुष्पराशिसे बहुतसी मालायें बनाये , उसी प्रकार उत्पन्न हुये प्राणीको चाहिये कि वह बहुतसे भले (कर्मों को करे ।

श्रावस्ती

आनन्द (थेर)

५४—न पुष्पगन्धो पटिवातमेति

न चन्दनं तगरमल्लिका वा ।

सतञ्च गन्धो पटिवातमेति

सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवति ॥११॥

(न पुष्पगन्ध प्रतिवातमेति

न चन्दनं तगर-मल्लिके वा ।

सता च गन्ध प्रतिवातमेति

सर्वा दिश सत्पुरुष प्रवति ॥११॥)

अनुवाद—हृत्तमी सुगन्ध इवासे उद्धरी धोर नही जाती, व चन्दन
तपर वा चमेडी (की गंध ही वैसा करती है)
किन्तु सगन्धनोंकी सुगन्ध इवासे उद्धरी धोर जाती है
सत्युक्त समी दिशाधोमि (सुगन्ध) कहाते हैं ।

५५—घन्धनं तगर वापि उत्पल इय वस्सिकी ।

एतेसं गन्धजाताम सीसगन्धो अनुत्तरो ॥१२॥

(घन्धनं तगर वापि उत्पल इय वार्थिकी ।

एतेसं गन्धजातामां सीसगन्धोऽनुत्तरः ॥१२॥)

अनुवाद—चन्दन वा तगर चमक वा चमी, इन समी (की) सुगन्धों-
मे सदाचारकी सुगन्ध उत्तम है ।

राजगृह (विबुधन)

महाकस्य

५६—अप्पमत्तो अमं गन्धो याय तगरघन्धमो ।

य च सीसवत्तं गन्धो वाति वेवेसु उत्तमो ॥१३॥

(अप्पमाप्रोऽयं गन्धो योऽयं तगरघन्धनी ।

य सीसवत्तां गन्धो वाति वेवेसु उत्तमः ॥१३॥)

अनुवाद—तगर कीर चन्दनकी जो वह गंध फैलती है वह चन्दन
मात्र है और जो वह सदाचारियोंकी गंध है, (वह) उत्तम
(गन्ध) दिशाधोमि फैलती है ।

राजगृह (वेद्धव)

योगिन्ध (बेर)

५७—तेस सम्पन्नसीसामं आपमाबिहारिमं ।

सम्मबद्धाविमुत्तानं मारो मगं न विन्दति ॥१४॥

(तेषां सम्पन्नशीलानां अप्रमाद-विहारिणाम् ।
सम्यग्-ज्ञान-विमुक्तानां मारो मार्गं न विन्दति ॥१४॥)

अनुवाद—(जो) वे सदाचारी निरालस हो विहरनेवाले, यथार्थ
ज्ञान द्वारा मुक्त (हो गये हैं), (उनके) मार्गको मार
नहीं पकड़ सकता ।

जेवत्तन

गरहादिन्न

५८—यथा सकारधानस्मिं उज्झितस्मिं महापथे ।
पद्मं तत्थ जायेथ शुचिगन्धं मनोरमं ॥१५॥

(यथा संकारधान उज्झिते महापथे ।
पद्मं तत्र जायेत शुचिगन्धं मनोरमम् ॥१५॥)

५९—एव संकारभूतेसु अन्धभूते पृथग्जने ।
अतिरोचति पञ्जाय सम्मासम्बुद्धसावको ॥१६॥

(एव संकारभूते अन्धभूते पृथग्जने ।
अतिरोचते प्रज्ञया सम्यक्-संबुद्ध-श्रावक ॥१६॥)

अनुवाद—जैसे महापथ पर फेंके कूड़ेके ढेरपर मनोरम, शुचिगन्ध,
गुलाब (=पद्म) उत्पन्न होवे, इसी प्रकार कूड़े के समान
अन्धे अज्ञानों (=पृथग्-जनों) में सम्यक्-संबुद्ध (=यथार्थ
ज्ञानी) का अनुगामी (अपनी) प्रज्ञासे प्रकाशमान
होता है ।

४—पुष्पवर्ग समाप्त

५—वालवर्गो

आमरती (केतवन)

हरिद्रि सेषठ

६०—वीधा जागरतो रसि वीध सन्तस्स योजनम् ।
वीधो वासानं संसारो सद्धम्मं अविजामतं ॥१॥

(वीधं जाग्रतो रसि वीधं आन्तस्य योजनम् ।
वीधो वासानां संसारं सद्धम्मं अविजानताम् ॥१॥)

अनुवाद—जागतेको राठ बन्धी होती है; पकेके छिदे बोजन बन्धा होता है; सपने धर्मको न जानवेबाधे मूर्खों के छिदे संसार (=आवागमन) बन्धा है ।

राजगृह

पादधियारी (=शिल्प)

६१—अरुञ्जे नाधिगच्छेय्य सेय्य सविसमत्तनो ।
एकधरियं बद्धुह कयिरा नत्थि याले सहायता ॥२॥

(अरुञ्जं अत् नाधिगच्छेत् धेय्याम महत्तं आत्मन ।
एकधर्या हत्तं कुर्यात् नास्ति याले महायता ॥२॥)

अनुवाद—यदि विचरण करते अपने अनुरूप भलेमानुस को न पाये, तो दृढ़ताके साथ अकेला ही विचरे, मूढ़से मित्रता नहीं निभ सकती ।

श्रावस्ती

आनन्द (सेठ)

६२-पुत्ता म'त्थि धनम्म'त्थि इति बालो विहञ्जति ।
अत्ता हि अत्तनो नत्थि कुतो पुत्तो कुतो धनं ॥३॥

(पुत्रा मे सन्ति धनं मे ऽस्ति इति बालो विहन्यते ।
आत्मा हि आत्मनो नास्ति कुतः पुत्रः कुतो धनम् ॥३॥)

अनुवाद—“पुत्र मेरा है”, “धन मेरा है” ऐसा (करके) अज्ञ (नर) उत्पीड़ित होता है, जब आत्मा (= शरीर) ही अपना नहीं, तो कहाँसे पुत्र और धन (अपना होगा) ।

जेतवन

गिरहकट चोर

६३-यो बालो मञ्जती बाल्य पण्डितो चापि तेन सो ।
बालो च पण्डितमानी, स वै बालो'ति वुच्चति ॥४॥

(यो बालो मन्यते बाल्यं पण्डितश्चापि तेन स ।
बालश्च पण्डितमानी स, वै बाल इत्युच्यते ॥४॥)

अनुवाद—जो (कि वह) अज्ञ होकर (अपनी) अज्ञताको जानता है, इस (अंश) से वह पण्डित (= जानकार) है । वस्तुतः अज्ञ होकर भी जो पण्डित होनेका दम भरता है, वही अज्ञ (= बाल) कहा जाता है ।

आकली (बेतवन)

ववापी (बेर)

६४—यावजीवमपि चे बालो पण्डित परियरुपासति ।

न सो धम्म विजानाति बब्बी सूपरस यथा ॥५॥

(यावज्जावमपि चतु बालाः पंडितं पर्युपास्ते ।

न स धर्मं विजानाति बर्बी सूपरसं यथा ॥५॥)

अनुवाद—बाहे बाल (= बच्चा; अज्ञ) जीवन भर पंडितकी सेवामें रहे (तो भी) वह धर्मको (जैसे ही) नहीं जान सकता, जैसे कि बबड़ी (= बन्नी = बबड़ी) सूप (= बाक आदि) के रस को ।

आकली (बेतवन)

म्यवापि (मिट्टुबोग)

६४—मुहसमपि चे विठञ्जु पण्डितं परियरुपासति ।

सिप्यं धम्मं विजानाति जिह्वा सूपरस यथा ॥६॥

(मुहसमपि चतु विठञ्जु पंडितं पर्युपास्ते ।

सिप्यं धर्मं विजानाति जिह्वा सूपरसं यथा ॥६॥)

अनुवाद—बाहे विठ (पुरुष) एक मुहस ही पंडितकी सेवामें रहे (तो भी वह) शीघ्र ही धर्मको जान सकता है, जैसे कि जिह्वा सूफके रस को ।

राकपूद (बेतवन)

सुपपुद (कापी)

६६—अरिन्त यासा दुम्मेया अमित्तेनेव अराना ।

करोस्तो पापकं कम्मं यं हीति कट्टुकफसं ॥७॥

(अरिन्ति बाला दुम्मेयसोऽमित्तेषीवात्मना ।

अपन्ना पापकं कम्मं यद्भवति कट्टुकफसम् ॥७॥)

अनुवाद—पाप कर्मको—जो कि कट्ट फल देनेवाला होता है—करते
दुष्ट बुद्धि अन्न (जन) अपने ही अपने शत्रु बनते हैं ।

जेतवन

कोई कस्तप

६७—न त कम्म कतं साधु य कत्वा अनुत्पपति ।

यस्स अस्सुमुखो रोद विपाक पटिसेवति ॥८॥

(न तत् कर्म कृतं साधु यत् कृत्वाऽनुत्पप्यते ।

यस्याश्रुमुखो रुदन् विपाकं प्रतिसेवते ॥८॥)

अनुवाद—उस कामका करना ठीक नहीं, जिसे करके (पीछे)
अनुताप करना पड़े, और जिसके फलको अश्रुमुख रोते
भोगना पड़े ।

राजगृह (वेणुवन)

सुमन (मात्मी)

६८—तच्च कम्म कत साधु य कत्वा नानुत्पपति ।

यस्स पतीतो सुमनो विपाकं पटिसेवति ॥९॥

(तच्च कर्म कृतं साधु यत् कृत्वा नानुत्पप्यते ।

यस्य प्रतीतः सुमनो विपाकं प्रतिसेवते ॥९॥)

अनुवाद—उसी कामका करना ठीक है, जिसे करके अनुताप करना
(= पछताना) न पड़े, और जिसके फल को प्रसन्न मन से
भोग करे ।

जेतवन

उप्पलवण्णा (थेरी)

६९—मधूव मञ्जति बालो याव पाप न पच्चति ।

यदा च पच्चती पापं अथ दुक्खं निगच्छति ॥१०॥

(मरिचिव मन्यते वासो यावात् पापं न पच्यते ।

यदा च पच्यते पापं अथ दुःखं निगच्छति ॥१०॥)

अनुवाद—अन्न (अन्न) जब तक पापकर्म परिपाक नहीं होता, तब तक उसे मनुके समान जायता है। जब पाप कर्म परिपाक होता है तो दुःखी होता है।

रत्नपूइ (वेदवचन)

अनुक्त (भाष्यक साधु)

७०—मासे मासे कुसुगणेन वासो भुञ्जेय भोजनम् ।

न सो सस्रतधम्मामं कलं अगधति सोमसि ॥११॥

(मासे माम् कुश्यामेष वासा भुञ्जीत भोजनम् ।

न स संख्यातधर्माणां कलामर्हति शोडयीम् ॥११॥)

अनुवाद—बहि अन्न (पुष्प) कुसुमी नीक से महीने महीने पर खाया जाये तो जो धर्म के धामधरों के सोचहमें भान के भी बराबर (बह पुत्र) नहीं हो सकता।

रत्नपूइ (वेदवचन)

अधिपेत

७१—न हि पापं कृतं कम्मं सज्जु सीरं 'व मुञ्चति ।

इहन्त वासमन्वेति भस्माच्छुभ्रो 'व पावको ॥१२॥

(नहि पापं कृतं कर्म सद्यः सीरमिव मुञ्चति ।

इहन् वासमन्वेति भस्माच्छुभ्र इव पावका ॥१२॥)

अनुवाद—वासे दूब की मति किया पाप कर्म (कृत) निष्कार नहीं जाता बह धरमसे बँधी धायकी मति दूब करता बहजब क्य पीड़ा करता है।

राजगृह (वेणुवन)

सद्विकृठ (प्रेत)

७२--यावदेव अनर्थाय व्रतं बालस्य जायति ।

हन्ति बालस्य सुककंसं मुद्धमस्य विपातयं ॥१३॥

(यावदेव अनर्थाय व्रतं बालस्य जायते ।

हन्ति बालस्य शुक्लाशं मूर्धानमस्य विपातयन् ॥१३॥)

अनुवाद—मूढ़ (=बाल) का जितना भी ज्ञान है, (वह उसके)
अनर्थ के लिये होता है। वह उसकी मूर्धा (=शिर=प्रज्ञा)
को गिराकर उसके शुक्ल (=धवल=शुद्ध) अंशका विनाश
करता है ।

जेतवन

सुधम्म (धेर)

७३--असतं भावनमिच्छेय्य पुरेक्खारञ्च भिक्खुसु ।

आवासेसु च इस्सरिय पूजा परकुलेसु च ॥१४॥

(असदुभावनमिच्छेत् पुरस्कारं च भिक्षुषु ।

आवासेषु चैश्वर्यं पूजा परकुलेषु च ॥१४॥)

७४--ममेव कतमञ्जन्तु गिही पब्बजिता उभो ।

ममेवातिवसा अस्सु किच्चाकिच्चेसु किस्मिच्चि ।

इति बालस्य सङ्कप्पो इच्छा मानो च बड्ढति ॥१५॥

(ममैव कृतं मन्येता गृहि-प्रव्रजितावुभौ ।

ममैवातिवशा. स्याता कृत्याकृत्येषु केषु चित् ।

इति बालस्य संकल्प इच्छा मानश्च वर्द्धते ॥१५॥)

अनुवाद—अप्रस्तुत वस्तु की चाह करता है, भिक्षुओं में वडा बनना

(चाहता है) मठों (और निवासों) में स्वामीपद
 (=पेरबर्न) और दूसरे कुत्तों में पूजा (चाहता है) । पुरुष
 और सन्पासी दोनों मेरे ही किय को मावें किसी भी कुत्त-
 अकृत्य में मेरे ही परावर्ती हों—येसा मूक संकल्प होता
 है, (जिससे उसकी) इच्छा और अभिभाव बढ़ते हैं ।

आकली (बेटकव) (बचनासी) सिद्ध (वेर)

७५—अक्या हि सामोपनिषा अक्या निब्बान-गामिनी ।

एवमेतं अमिञ्जाय भिक्खू बुद्धस्स सावको ॥

सत्कार माभिमन्वेय्य विवेकमनुबूहयेत् ॥१६॥

(अक्या हि सामोपनिषदु अक्या निर्वासगामिनी ।

एवमेतदु अमिञ्जाय भिक्खुर्पुंसस्य सावका ।

सत्कार माभिमन्वेत् विवेकमनुबूहयेत् ॥१६॥)

अनुवाद—आम का रास्ता दूसरा ही और निर्वास को छोड़ जाने का
 दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी भिक्खु
 सत्कार का अभिमन्वन न करे और विवेक (=पुनःसंन्यासी)
 को नपावे ।

५—वाक्यार्थ समाप्त

६—परिडतवग्गो

जेतवन

राघ (अर)

७६—निधीन' व पवत्तार य पस्से वज्जदस्सिन ।
निग्गह्वार्दि मेधावि तादिस पण्डितं भजे ।
तादिसं भजमानस्स सेय्यो होति न पापियो ॥ १ ॥

(निधीनामिव प्रवक्तारं यं पश्येत् वज्ज्यदशिनम् ।
निगृह्यवादिनं, मेधाविनं तादृशं पण्डितं भजेत् ।
तादृशं भजमानस्य श्रेयो भवति न पापीय ॥ १ ॥)

अनुवाद—(भूमिमें गुप्त) निधियों के बतलानेवाले की तरह, घुराईको दिखलानेवाले ऐसे संयमवादी, मेधावी पण्डितकी सेवा करे । ऐसेके सेवन करनेवालेका कल्याण होता है, अमगच्छ नहीं (होता) ।

जेतवन

अत्सञ्जी, पुनच्चसू

७७—ओवदेय्यानुसासेय्य असब्भा च निवारये ।
सत हि सो पियो होति असत होति अप्पियो ॥ २ ॥

(चाहता है) मठों (और विद्यालयों) में स्थायी रूप
 (= बेरबर्क) और दूसरे कुर्तों में पूजा (चाहता है) । एवम्
 और सम्बन्धी दोनों मेरे ही किये को मानें, किसी भी कृत-
 कृत्य में मेरे ही बतवती हों—वेसा मूढ़का संकल्प होता
 है, (जिससे उसकी) हत्या और अभिमान बनते हैं ।

आकलौ (बेटवन) (बचपासी) किम्ब (बेर)

७५—अस्या हि लामोपनिषत् अस्या निर्वाणगामिनी ।

एवमेतद् अभिजाय मिषु बुद्धस्य सावको ॥

सत्कारं नामिनस्वेत् विवेकमनुब्रूह्ये ॥१६॥

(अस्या हि लामोपनिषत् अस्या निर्वाणगामिनी ।

एवमेतद् अभिजाय मिषु बुद्धस्य सावकाः ।

सत्कारं नामिनस्वेत् विवेकमनुब्रूह्येत् ॥१६॥)

अनुवाद—जाम का रास्ता बूझता है और निर्वाण को खोजने वाला
 दूसरा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुयायी मिषु
 सत्कार का अभिमान न करे और विवेक (= बुद्धावस्था) को बढ़ावे ।

५—बालवर्ग समाप्त

परिष्ठित सामग्रे

तिका

जन ।

नच्छका

पण्डिता ॥ ५ ॥

नमयन्ति तेजनम् ।

नमयन्ति परिष्ठिताः ॥५॥)

, वाण बनानेवाले वाणको ठीक
क करते हैं, और परिष्ठित (जन)

महिय (येर)

वातेन न समीरति ।

समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

वातेन न समीर्यते ।

न समीर्यन्ते परिष्ठिताः ॥६॥)

वा से कपायमान नहीं होता, ऐसे ही
प्रशंसा से विचलित नहीं होते ।

काश-माता

भीरो विष्पसन्नो अनाविलो ।

वान विष्पसीदन्ति पण्डिता ॥७॥

(चाहता है) मर्तों (और निवासों) में स्वामीत्व
 (= देरकर्यं) और दूसरे कुत्रों में पूज्य (चाहता है) । एतत्त्वं
 और सन्ध्यासी दोषों मेरे ही किम् को मायें किसी भी कृष्ण-
 सन्ध्या में मेरे ही कटवती हों—सूसा मूहका संकल्प होय
 है, (जिससे उसकी) हृष्टा और अभिमान करते हैं ।

आकण्ठी (श्रेष्ठवन) (वनवासी) सिम्भ (नेर)

७५—अभ्या हि लाभोपनिषद् अभ्या निर्वाणगामिनी ।

एवमेतद् अभिञ्जाय भिक्षू बुद्धस्त सावको ॥

सत्कार नाभिमन्वेय्य विवेकमनुब्रूह्ये ॥१६॥

(अभ्या हि लाभोपनिषद् अभ्या निर्वाणगामिनी ।

एवमेतद् अभिञ्जाय भिक्षुर्बुद्धस्य सावकः ।

सत्कारं नाभिमन्वेत् विवेकमनुब्रूह्ये ॥१६॥)

अनुवाद—जाम का रास्ता सूसा है, और निर्वाण को खे जाने वाला
 सूसा—इस प्रकार इसे जानकर बुद्ध का अनुगामी सिद्ध
 सत्कार का अभिमान न करे और विवेक (= बुद्धात्तत्त्व) को
 न भूलें ।

५—बालपर्व समाप्त

जेतवन

पण्डित सामणोर

८०—उदक हि नयन्ति नेत्तिका
 उसुकारा नमयन्ति तेजन ।
 दाहं नमयन्ति तच्छका
 अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

(उदकं हि नयन्ति नेत्तिका इत्थुकारा नमयन्ति तेजनम् ।
 दाहं नमयन्ति तच्छका आत्मानं दमयन्ति पण्डिताः ॥५॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी को ले जाते हैं, वाण बनानेवाले वाणको ठीक करते हैं, बड़ई लकड़ी को ठीक करते हैं, और पण्डित (जन) अपना दमन करते हैं ।

जेतवन

मदिय (घेर)

८१—सेलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
 एवं निन्दाप्रशंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

(शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।
 एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते पण्डिताः ॥६॥)

अनुवाद—जैसे ठोस पहाड़ हवा से कपायमान नहीं होता, ऐसे ही पण्डित निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते ।

जेतवन

काण-माता

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्तो अनाविलो ।
 एवं धम्मानि सुत्त्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥७॥

(भववदेवतुशिल्पात् अक्षम्याद्य निवारयेत् ।
सतां हि स प्रियो भवति असतां भवत्यप्रिया ॥३॥)

अनुवाद—(जो) सतुपदेत वेता है अनुशासन करता है और धर्म-
के विचारण करता है वह सतुपदोंके प्रिय होता है और
असतुपदोंको अप्रिय ।

वेतव्य

वृद्ध (बेर)

७८—न भजे पापके मिते न भज पुरिसाधमे ।
भजेथ मित कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे ॥३॥

(न भजेत् पापानि मित्राणि न भजेत् पुरुषाधमान् ।
भजेत् मित्राणि कल्याणानि भजेत् पुरुषानुत्तमान् ॥३॥)

अनुवाद—दुष्ट मित्रोंका सेवन न करे न अधम पुरुषोंका सेवन करे ।
अच्छे मित्रोंका सेवन करे उत्तम पुरुषोंका सेवन करे ।

वेतव्य

महाकपिल (बेर)

७९—धम्मपीत्थी सुखं सेति विप्पसन्नेम चेतसा ।
अरियप्पवेदिते धम्मे सदा रमति पण्डितो ॥४॥

(धर्मपीत्थीः सुखं शेत विप्रसन्नम चेतसा ।
आर्यप्रवेदिते धर्मे सदा रमति पण्डितः ॥४॥)

अनुवाद— धर्म (-रथ) का धार करनेवाला प्रसन्न-चित्त हो सुखरूप
घोटा है पण्डित (जग) आर्योंके अंतर्गत धर्ममें सदा रमण
करते हैं ।

जेतवन

परिद्वत सामगोर

८०—उदकं हि नयन्ति नेत्तिका
 उसुकारा नमयन्ति तेजन ।
 दारु नमयन्ति तच्छका
 अत्तानं दमयन्ति पण्डिता ॥ ५ ॥

(उदकं हि नयन्ति नेत्तिका इषुकारा नमयन्ति तेजनम् ।
 दारु नमयन्ति तक्षका आत्मानं दमयन्ति परिद्वताः ॥५॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी को ले जाते हैं, वाण बनानेवाले वाणको ठीक करते हैं, बदर्ई लकड़ी को ठीक करते हैं, और परिद्वत (जन) अपना दमन करते हैं ।

जेतवन

मद्विय (येर)

८१—शैलो यथा एकघनो वातेन न समीरति ।
 एवं निन्दाप्रशंसासु न समिञ्जन्ति पण्डिता ॥६॥

(शैलो यथैकघनो वातेन न समीर्यते ।
 एवं निन्दाप्रशंसासु न समीर्यन्ते परिद्वताः ॥६॥)

अनुवाद—जैसे ठोस पहाड़ हवा से कंपायमान नहीं होता, ऐसे ही परिद्वत निन्दा और प्रशंसा से विचलित नहीं होते ।

जेतवन

काश-माता

८२—यथापि रहदो गम्भीरो विप्पसन्तो अनाविलो ।
 एवं घम्मानि सुत्त्वान विप्पसीदन्ति पण्डिता ॥७॥

(यथापि इहो गम्भीरो विप्रसन्नोऽनाविहाः ।
 पथं धमान् भ्रुत्वा विप्रसीदन्ति पण्डिताः ॥५॥

अनुवाद—धर्मों को सुकर पण्डित (ब्रह्म) अर्थात् स्वच्छ, निर्मल
 सरोवर की भाँति स्वच्छ (समुद्र) होते हैं ।

वैतथ्य

पाँच सौ मिष्ठ

८३—सुखत्थ वे सप्पुरिसा बज्जन्ति
 न कामकामा लपयन्ति सन्तो ।
 सुत्तेन फुट्ठा अथवा बुत्तेन
 न उच्चवावर्धं पण्डिता इस्सयन्ति ॥ ८ ॥

(सर्वत्र वै सत्युद्यया प्रजन्ति न कामकामा लपन्ति सन्ता ।
 सुत्तं न स्पृष्टा अथवा सुत्तं न मोक्षावर्धं पण्डिता दर्शयन्ति ॥८॥)

अनुवाद—सत्युक्त सभी अर्थात् जाते हैं (वह) लोगों के विद् बात
 नहीं अर्थात्; सुख मित्रे वा सु-त्त पण्डित (ब्रह्म) विद्वा
 नहीं प्रदर्शित करते ।

वैतथ्य

धम्मिक (बेर)

८४—न अराहेतु न परस्स हेतु
 न पुरामिच्छे न धमं न रट्ठं ।
 न इच्छेय्य अथम्मो न समिद्धिमरानो
 सीलवा पठ्ठमवा धम्मिको सिया ॥ ९ ॥

(नात्महेतोः न परस्य हेतोः
 न पुत्रमिच्छेत् न धनं न राष्ट्रम् ।
 नेच्छेद् अधर्मेण समृद्धिमात्मन
 स शीलवान् प्रजावान् धार्मिकः स्यात् ॥६॥)

अनुवाद—जो अपने लिए या दूसरे के लिये पुत्र, धन, और राज्य नहीं चाहते, न अधर्मसे अपनी उन्नति चाहते हैं; यही सदाचारी (= शीलवान्) प्रजावान् और धार्मिक हैं ।

जेतवन

धर्मश्रमण

८५—अल्पका ते मनुस्सेसु ये जना पारगामिनो ।
 अथायं इतरा पजा तीरमेवानुधावति ॥१०॥

(अल्पकास्ते मनुष्येषु ये जनाः पारगामिनः ।
 अथेमा इतराः प्रजा तीरमेवानुधावति ॥१०॥)

८६—ये च खो सम्मदक्खाते धम्मे धम्मानुवर्त्तिनो ।
 ते जना पारमेस्सन्ति मच्चुधेय्य सुदुत्तर ॥११॥

(ये च खलु सम्यगाख्याते धर्मे धर्मानुवर्तिनः ।
 ते जना पारमेप्यन्ति मृत्युधेयं सुदुस्तरम् ॥११॥)

अनुवाद—मनुष्योंमें पार जानेवाले जन विरले ही हैं, यह दूसरे लोग तो तीरे ही तीरे दौड़नेवाले हैं । जो सु याख्यात धर्मका अनुगमन करते हैं, वह मृत्युगृहीत अतिदुस्तर (ससार-सागर) को पार करेंगे ।

वेतव

पाँच सौ बचाएत मित्रु

८७-कच्छं धम्मं विप्पहाय सुक्क भावेष पण्डितो ।

ओहा अनोक आगम्म विवेके यत्थ दूरमं ॥१२॥

(कच्छं धर्मं विप्रहाय सुक्कं भावयेत् पण्डितः ।

ओकत् अनोकं आगम्य विवेके यत्र दूरमम् ॥१२॥)

८८-तत्राभिरसिमिच्छेय्य हित्वा कामे अकिञ्चनो ।

परियोवपेय्य अत्तामं चित्तस्सेसेहि पण्डितो ॥१३॥

(तत्राभिरसिमिच्छेत् हित्वा कामान् अकिञ्चनः ।

पयवदापयेत् आत्मानं चित्तस्सेहीः पण्डितः ॥१३॥)

अनुवाद— कच्छे धर्म (= पाप) को छोड़कर पण्डित (ब्रह्म) कच्छ
 (= धर्म) का आचरण करे । वरसे वेदर हो दूर का विवेक
 (= एकान्त) का सेवन करे । भोगोंको छोड़ सर्वस्वत्याग
 हो यही रत रहनेकी इच्छा करे । पण्डित (ब्रह्म) विवे-
 के मन्त्रोंसे अपनेको परिच्छिन्न करे ।

८९ येसं सम्बोधिज्झेस सम्मा चित्त सुभावितं ।

आदानपट्टिमिस्सत्ते अनुपादाय ये रता ।

सीणासवा जुत्तोमस्तो ते लोके परिनिब्बुत्ता ॥१४॥

(येषां सम्बोधिर्गोपु सम्यक् चित्तं सुभावितम् ।

आदानप्रतिमिस्सत्तौ अनुपादाय ये रताः ।

सीणासवा ज्योतिष्मस्तस्ते लोके परिनिबृताः ॥१४॥)

अनुवाद— संबोधि (= परम ज्ञान)के धर्मों (= संबोधिर्गो) में चित्त
 चित्त धर्मी मन्त्र परिमादह (= धम्मत्त,) हो गया है ;

जो परिग्रह के परित्याग पूर्वक अपरिग्रह में रहें हैं। ऐसे, चित्त के मजों से निर्मुक्त (= प्रीणात्म्य), धृतिमान् (धुरप) श्लोक में निर्वाण को प्राप्त हैं।

६ परिदत्तश्लो समाप्त

७--अर्हन्तवर्गो

राज्यपूह (बीरक अम आचरण)

बीरक

६०-गतहिमो विसोकस्त बिप्पमुसस्त सब्बाधि ।
सब्बागन्धप्पहोणस्य परिस्साहो न बिब्बसति ॥१॥

(गताध्वनो विशोकस्य बिप्रमुपतस्य स्वर्धया ।
सर्वप्रभ्यप्रहीयस्य परिस्साहो न बिद्यते ॥१॥)

अनुवाद—किसका मार्ग (गमन) समाप्त हो चुका है जो शोक-
रहित तथा सर्वथा मुक्त है, जिसकी सभी प्रभियाँ धीब हो
पाई हैं ; उसके बिबे सम्पाप नहीं है ।

राज्यपूह (वेत्तवच)

अज्ञानस्य

६१-उय्युब्बन्ति सतीमन्तो न निकेते रमन्ति ते ।
हंसा 'ध पत्तमं हित्वा ओकमोक जहन्ति ते ॥२॥

(उद्युज्जत स्मृतिमन्ता न निकेत रमन्ति त ।
हंसा इव पत्तमं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥२॥)

अनुवाद—सचेत हो वह उद्योग करते हैं, (गृह-सुख) में रमण नहीं करते, हंस जैसे छुद्र जलाशय को छोड़कर चले जाते हैं, (वैसे ही वह अर्हत्) गृह को छोड़ जाते हैं ।

गेतवन

वेलट्टि सीस

६२—येस सन्नचयो नत्थि ये परिञ्जालभोजना ।

सुञ्जतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।

आकासे 'व सकुन्तानं गति तेसं दुरन्नया ॥३॥

(येपां सन्नचयो नास्ति ये परिञ्जातभोजनाः ।

शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचर ।

आकाश इव शकुन्ताना गतिः तेषां दुरन्वया ॥३॥)

अनुवाद—जो (वस्तुओं का) संचय नहीं करते, जिनका भोजन नियत है, शून्यता-स्वरूप तथा कारण-रहित मोक्ष (= निर्वाण) जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी गति (= गंतव्य स्थान) आकाश में पक्षियों की (गति की) भाँति अज्ञेय है ।

राजगृह (वेणुवन)

अनुरुद्ध (थेर)

६३—यस्मा 'सवा परिक्खीणा आहारे च अनि सतो ।

सुञ्जतो अनिमित्तो च विमोक्खो यस्स गोचरो ।

आकासे 'व सकुन्तानं पदं तस्स दुरन्नयं ॥४॥

(यस्यास्रवा परिक्खीणा आहारे च अनि सृतः ।

शून्यतोऽनिमित्तश्च विमोक्षो यस्य गोचरः ।

आकाश इव शकुन्तानां पदं तस्य दुरन्वयम् ॥४॥)

७—अर्हन्तवग्गो

राज्यगृह (बीरक अ अज्ञान)

बीरक

६०—गताघ्नो विसोकस्त विप्रमुत्तस्त सखाधि ।
सख्यगन्धप्यहोरास्य परिषाहो न बिद्ध्यति ॥१॥

(गताघ्नो विसोकस्य विप्रमुत्तस्य सखाधि ।
सख्यगन्धप्यहोरास्य परिषाहो न विद्यते ॥१॥)

अनुवाद—जिसका मार्ग (-गमन) समाप्त हो चुका है, जो शोक-
रहित तथा सखीया युक्त है; जिसकी सखी प्रविर्वा बीरक हो
पाई है; उसके बिच सखाप नहीं है ।

राज्यगृह (वेदवच)

महाकफस्य

६१—उप्युञ्जन्ति सतीमन्तो न निकेतो रमन्ति ते ।
हंसा 'व पत्समं हित्वा ओकमोकं जहन्ति ते ॥२॥

(उप्युञ्जत स्मृतिमन्ता न निकेत रमन्ति ते ।
हंसा इव पत्समं हित्वा ओकमोकं जहति ते ॥२॥)

(पृथिवीसमो न विरुध्यते इन्द्र कीलोपमस्तादृक् सुव्रतः ।
हृद् इवापेतकर्दमः संसारा न भवन्ति तादृशः ॥६॥)

अनुवाद—वैसा सुन्दर घतधारी इन्द्रकीलके समान (अचल) तथा पृथिवीके समान जो चुब्ध नहीं होता; ऐसे (पुरुष) में कर्दमरहित सरोवरकी भाँति संसार (मल) नह रहता ।

जेतवन

कोसग्यिभासित तिस्र (थेर)

६६-सन्त तस्स मनं होति सन्ता वाचा च कम्म च ।

सम्मदञ्जाविमुत्तस्स उपसन्तस्स तादिनो ॥७॥

(शान्तं तस्य मनो भवति शान्ता वाक् च कर्म च ।

सम्यगाक्षाविमुक्तस्य उपशान्तस्य तादृशः ॥७॥)

अनुवाद—उपशान्त और यथार्थ ज्ञानद्वारा मुक्त हुये उस (अर्हत् पुरुष) का मन शान्त होता है, वाणी और कर्म शान्त होते हैं ।

जेतवन

सारिपुत्र (थेर)

६७-अस्सद्धो अकतञ्जू च सन्धिच्छेदो च यो नरो ।

हतावकासो वन्तासो स वै उत्तमपोरिसो ॥८॥

(अश्रद्धोऽकृतञ्जश्च सन्धिच्छेदश्च यो नरः ।

हतावकाशो वान्ताश स वै उत्तम पुरुष ॥८॥)

अनुवाद—जो (मूढ़-) श्रद्धारहित, अकृत (= बिना बनाये = निर्वाण)-
श्च, (संसारकी) संधिका छेदन करनेवाला, अवकाशरहित,

अनुवाद—जिसके आसन (=सब) बीच हो गये वो आहार में क-
तंत्र नहीं वो शुभ्यता है ।

आश्वत्थी (पूर्वाराम)

महाकृष्ण

६४—यस्मिन्प्रियाणि समर्थं गतानि,
अस्ता यथा सारथिना सुवन्ता ।
पहीनमानस्त अनासवस्त,
देवापि तस्त विह्वयन्ति तादिनो ॥५॥

(यस्यन्प्रियाणि शमतां गतानि,
अस्ता यथा सारथिना सुवन्ताः ।
पहीयमानस्य अनासवस्य देवा,
अपि तस्य विह्वयन्ति तादिना ॥५॥)

अनुवाद—सारथी द्वारा सुवन्त (=सुगिरित) अर्थात् श्री प्रति
जिसकी इन्द्रिणी शान्त हैं जिसके अभिभावक हो गये
(और) वो आश्वत्थी है; ऐसे सब (पुत्र) श्री देवता
की कृपा करते हैं ।

शेठवन

शारिपुत्र (वेर)

६५—यथीसमो मो विरुज्जति
इन्द्रोत्पमो सावि सुवतो ।
रहो 'व अपेतकहमो
संसारा न भवन्ति सादिनो ॥६॥

(विषय-) भोगको कामकर दिना पर ही वही उत्तम पुत्र है ।

वेतस्य (अदिरवली) वेत्त (बेर)

६८ गामे वा यदि वा'रुद्धे निम्ने व यदि वा यत्ने ।

यत्थारहस्तो विहरन्ति त भूमि रामणोप्यक ॥६८॥

(ग्रामे वा यदि वाऽऽरण्ये निम्नं वा यदि वा स्थले ।

यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥६८॥)

अनुवाद—गाँवमें या जंगलमें निम्न वा (ऊँचे) स्थलमें वहाँ (वहाँ) धर्म (भोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है ।

वेतस्य

आरक्ष्यक पिण्ड

६९-रमणीयानि अरुद्धानि यत्थ न रमते जनो ।

धीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेत्तिनो ॥६९॥

(रमणीयाभ्यरणयानि यत्थ न रमन्त जन ।

धीतराग्य रमस्ते न त कामगवेषिणः ॥६९॥)

अनुवाद—(जस) रमणीय यत्थ में वहाँ (आधारेण) जब रमन्त वहाँ करते, काम (धर्मों) क पीछे न मरुद्धेवासे धीतराग रमन्त करते ।

७-अर्हद्दण समाप्त

(विषय-) भोगको बमबकर दिवा कर है, वही यत्न पुरुष है ।

श्लोक (अदिरवन्ती) रेफठ (घेर)

६८ गामे वा यद्वि वा'रुञ्जे निम्ने वा यद्वि वा यसे ।

यत्पारहस्तो विहरन्ति तं भूमि रामणोम्यर्क ॥६८॥

(ग्राम वा यद्वि वाऽऽरण्ये निम्ने वा यद्वि वा स्थले ।

यत्रार्हन्तो विहरन्ति वा भूमि रमणीया ॥६८॥)

अनुवाद—गाँवमें वा बंगलमें, निम्न वा (ऊँचे) स्थलमें जहाँ (कहीं) धर्म (जोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है ।

श्लोक

धारयक मित्

६९-रमणीयानि धरुञ्जामि यत्न न रमते जनो ।

धीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥६९॥

(रमणीयाभ्यरणयानि यत्र न रमते जनः ।

धातरागा रमन्ते न त कामगवेसिनः ॥६९॥)

अनुवाद—(यत्र) रमणीय जन में जहाँ (साधारण) जन रमते नहीं करते, काम (भोगों) के लीये न भटकनेवाले धीतराग रमते करेंगे ।

(विप्य-) भोगको धम्मकर दिया कर है यही उच्च पुण्य है ।

चेतवन (बहिरवधी) रेवत (बेर)

६८ गामे वा यदि वा'रुञ्जे निम्ने वा यदि वा यत्ते ।

यत्पारहन्तो विहरन्ति त भूमि रामणेय्यक ॥६८॥

(ग्रामे वा यदि वाऽऽरण्ये निम्न वा यदि वा स्थले ।

यथाईस्ता विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥६८॥)

अनुवाद—ग्रामों वा वनमें, निम्न वा (ऊँचे) वनमें यहाँ (यहाँ) यहाँ (जोग) विहार करते हैं यही रमणीय भूमि है ।

चेतवन

चारव्यक भिच्छु

६९-रमणीयानि अरुञ्जानि यस्य न रमते जनी ।

धीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥६९॥

(रमणीयात्परण्यानि यत्र न रमते जन ।

वातरागा रमन्ते न त कामगवेसिणः ॥६९॥)

अनुवाद—(उस) रमणीय वन में यहाँ (साधारण) जब रमक यहाँ करते, काम (धोषों) के बीचे न मरकमेवासे धीतराग रमक करेंगे ।

(विपक्व-) भोजको वमवकर दिवा नर ई वही वत्तम पुकर ई ।

वेतवम

(कविरवणी) वेवठ (वेर)

६८ गामे वा यदि वा'रुञ्जे निम्मे व यदि वा वत्ते ।

यत्पारहन्तो विहरन्ति त भूमिं रमणीयकं ॥६८॥

(ग्राम वा यदि वाऽऽरण्ये निम्न वा यदि वा स्थले ।

यत्रार्हन्तो विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥६८॥)

अनुवाद—गाँवमें वा जंगलमें बिम्ब वा (जँबे) स्वर्णमें जहाँ (वही) धर्म (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय भूमि है ।

वेतवम

आरवणक भिन्नु

६९-रमणीयानि अरुञ्जानि यत्थ न रमते जनो ।

वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥६९॥

(रमणीयाभ्यरण्यानि यत्र न रमते जनः ।

वीतरागा रमन्ते न त कामगवेसिनः ॥६९॥)

अनुवाद—(वत्त) रमणीय वत्त में जहाँ (साधारण) जन रमक नहीं करते, काम (भोगों) के पीछे न मटकनेवाले वीतरागा रमक करेंगे ।

(धर्मं चरेत् सुचरितं न तं दुश्चरितं चरेत् ।
धर्मचारी सुत्तं शतेऽस्मिन् लोक परमं च ॥३॥)

अनुवाद—उत्साहो बने, आच्छसी न बने, सुचरित धम वा आचरण
करे धर्मचारी (पुत्र) इस लोक और परलोक में सुख-
पूर्वक होता है। सुचरित धर्म का आचरण करे, दुश्चरित
धर्म (= धम) का सेवन न करे। धर्मचारी (पुत्र) ।

वेतवन

पाँच सौ शाली (विष्ट)

१७०—यथा बुद्धयुक्तं पस्से यथा पस्से मरीचिकः ।
एवं लोकं भवेकान्तं मच्चुराजो न पस्सति ॥४॥

(यथा बुद्धयुक्तं पश्येत् यथा पश्येत् मरीचिकम् ।
एवं लोकमबलमाप्तं मृत्युराजो न पश्यति ॥४॥)

अनुवाद—जैसे बुद्धिसे को देखता है, जैसे (मनुष्य) मरीचिकको
देखता है, बौद्धको जैसे ही (जो पुत्र) देखता है, उसको
घोर बमराज (भ्राँच बलकर) नहीं देख सकता ।

राजगृह (वेतवन)

अधप राजकुमार

१७१—एष पस्सधिमं सोत्तं धितं राजपधूपमं ।
यत्थ बाला विपीवन्ति, नत्थि सङ्गो विजानताम् ॥५॥

(एष पश्यतेमं लोकं धितं राजपधोपमम् ।
यत्र बाला विपीवन्ति नास्ति संगो विजानताम् ॥५॥)

अनुवाद—आओ, विचित्र राजपथके समान इस लोकको देखो, जिसमें मूढ़ आसक्त होते हैं, ज्ञानी जन आसक्त नहीं होते ।

जेतवन

सम्बुञ्जानि (थेर)

१७२—यो च पुब्बे पमज्जित्वा पच्छा सो नप्पमज्जति ।

सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो' व चन्दिमा ॥६॥

(यश्च पूर्वं प्रमाद्य पश्चात् स न प्रमाद्यति ।

स इमं लोकं प्रभासयत्येभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥६॥)

अनुवाद—जो पहिले भूल कर फिर भूल नहीं करता, वह मेघ से उन्मुक्त चन्द्रमा की भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है ।

जेतवन

अगुलिमाल (थेर)

१७३—यस्स पापं कतं कम्मं कुसलेन पिधिद्यति ।

सो'मं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो' व चन्दिमा ॥ ७ ॥

(यस्य पापं कृतं कर्म कुशलेन पिधीयते ।

स इमं लोकं प्रभासयत्येभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा ॥७॥)

अनुवाद— जो अपने किये पाप कर्मोंको पुण्यसे ढाँक देता है, वह मेघसे उन्मुक्त० ।

आलवी

रगरेजकी कन्या

१७४—अन्धभूतो अयं लोको तनुकेथ विपस्सति ।

सकुन्तो जालमुत्तो' व अप्पो सग्गाय गच्छति ॥८॥

(अन्धभूतोऽयं लोकः तनुकोऽत्र विपश्यति ।

शकुन्तो जालमुक्त इवाल्पः स्वर्गाय गच्छति ॥८॥)

अनुवाद—यह श्लोक अन्धे श्रेया है यहाँ देरनेवाले मोक्षे ही हैं, जब से मुक्त पचीली भाँति बिरले ही स्वर्गको जाते हैं ।

श्लोक

तीस श्लोक

१७५—हंसादिच्छपये यन्ति आकासे यन्ति इन्द्रिया ।

नीयन्ति धीरा लोकम्हा जेतवा मारं सबाहिरिण ॥१॥

(हंसा आदित्यपये यन्ति आकाशे यन्ति इन्द्रिया ।

नीयन्ते धीरा लोकम्हा जित्वा मारं सबाहिभीम् ॥१॥)

अनुवाद—इस श्लोक (= आकाश) में जाते हैं (बोधी) जन्मि-बन्ध-
के आकाश में जाते हैं धीर (पुरुष) सेना-सहित मारको
पराजित कर शोकसे (निर्बाधको) से जाते जाते हैं ।

श्लोक

चिन्ता (माध्यमिक)

१७६—एकं धम्म अतीतस्स मुसावादिस्स अस्सुमी ।

वित्तिप्पणपरलोकस्स नत्थि पापं अकारिय ॥१०॥

(एकं धर्ममतीतस्य मुपावादिनो जन्तोः ।

वित्तीयपरलोकस्य नास्ति पापमकारयम् ॥१०॥)

अनुवाद—जो धर्मको अतिज्जम्ह कर चुका जो प्राणी मुपावाधी है,
जो परलोक (अन्नाद) बाध चुका है, उसके विषय कोई
पाप अकारणीय नहीं ।

श्लोक

(अनुक्त श्लोक)

१७७—अ (वे) कवरिया वेवसोकं अज्जन्ति

वासो ह वे न प्यसंसग्गि वान ।

धीरो च दानं अनुमोदमानो

तेनेव सो होति सुखी परत्थ ॥११॥

(न [वै] कवर्या देवलोकं व्रजंति
वाला ह वै न प्रशंसंति दानम् ।
धीरश्च दानं अनुमोदमानस्तेनैव
स भवति सुखी परत्र ॥११॥)

अनुवाद—कजूस देवलोक नहीं जाते, मूढ़ ही दानकी प्रशंसा नहीं करते;
धीर दानका अनुमोदन कर, उसी (कर्म) से पर (लोक)
में सुखी होता है ।

जेतवन

अनाथपिण्डिकके पुत्रका मरण

१७८—पथव्या एकरज्जेन सग्गस्स गमनेन वा ।

सब्बलोकाधिपत्त्येन सोतापत्तिफलं वर ॥१२॥

(पृथिव्या एकराज्यात् स्वर्गस्य गमनाद् वा ।

सर्वलोकाऽऽधिपत्याद् वा स्रोतःप्रापत्तिफलं वरम् ॥१२॥)

अनुवाद—(सारी) पृथिवीका अकेला राजा होनेसे, या स्वर्गके
गमनसे, (या) सभी लोकों के अधिपति होने से भी
स्रोतःप्रापत्ति* फल (का मिलना) श्रेष्ठ है ।

१३—लोकवर्ग समाप्त

+ जो पुरुष निर्वाण-नामी मार्ग पर इस प्रकार आरूढ़ हो जाता है,
कि फिर वह उससे श्रेष्ठ नहीं हो सकता, उसे स्रोत-प्रापन्न (= धार में
पडा) कहते हैं । इसी पद के लाभको स्रोत-प्रापत्ति-फल कहते हैं ।

१४—बुद्धवग्गो

बद्धेष्वा (बोधिर्मंड)

मादण्डिय (माण्डव)

१७६—यस्त जितं नावजीयति
जितमस्त नो याति कोचि सोके ।
त बुद्धमनस्तगोचरं अपरं केन पदेन नेस्तथ ? ॥१॥

(यस्य जितं नावजीयते

जितमस्य न याति कश्चिस्सोके ।

त बुद्धमनस्तगोचरं अपरं केन पदेन नेस्तथ ? ॥१॥)

१८०—यस्त जालिनी विसत्तिका
तग्हा मत्थि कुह्मिच्च नेतथे ।
तं बुद्धमनस्तगोचरं अपरं केन पदेन नेस्तथ ? ॥२॥

(यस्य जालिनी विपात्तिका तुष्ठा

नास्ति कुत्रचित् नेतुम् ।

तं बुद्धमनस्तगोचरं अपरं केन पदेन नेस्तथ ? ॥२॥)

पर]

अनुवाद—जिसका जीता बेजीता नहीं किया जा सकता, जिसके जीते (राग, द्वेष, मोह फिर) नहीं लोटते, उस अपद (= स्थान-रहित), अनन्तगोचर (= अनन्त को देखनेवाले) बुद्धको किस पय से प्राप्त करोगे ? जिसकी जाल फैलानेवाली विपरुषी वृष्णा कहीं भी लेजाने लायक नहीं रही; उस अपद ०।

संकाश्य नगर

देव, मनुष्य

१८१—ये भ्राणपसुता धीरा नेक्खम्मूपसमे रता ।

देवापि तेसं पिह्यन्ति सम्बुद्धान सतीमतं ॥३॥

(ये ध्यानप्रसिता धीरा नेक्कम्मर्योपशमे रताः ।

देवा अपि तेषां स्पृहयन्ति संबुद्धानां स्मृतिमताम् ॥३॥)

अनुवाद—जो धीर ध्यानमें लग्न, निष्कर्मता और उपशम में रत हैं, उन स्मृतिमान् (= सचेत) बुद्धोकी देवता भी स्पृहा (= होर्ष) करते हैं ।

धाराणसी

एरकपत्त (नागराज)

१८२—किच्छो मनुस्सपटलाभो किच्छ मच्चानं जीवितं ।

किच्छं सद्धम्मसवराणं किच्छो बुद्धानं उप्पादो ॥४॥

(कृच्छो मनुष्यप्रतिलाभ. कृच्छं मर्त्यानां जीवितम् ।

कृच्छं सद्धर्मश्रवणं कृच्छो बुद्धानां उत्पादः ॥४॥)

अनुवाद—मनुष्य (योनि) का लाभ कठिन है, मनुष्यका जीवन (मिलना) कठिन है, सच्चा धर्म सुननेको मिलना कठिन है, बुद्धों (= परम जानियों) का जन्म कठिन है ।

वेतव्य

आवन्द् (वेर) क्क प्रम

१८३-सब्बपापस्स अकरणां कुसलस्स उपसम्पवा ।
 स-च्चित्तपरियोदपमं, एत बुद्धान 'सासन ॥ ५ ॥
 (सर्वपापस्याकरस्य कुशलस्योपसम्पवा ।
 स्वच्छित्तपर्यवसापमं एतद् बुद्धानां शासनम् ॥५॥)

अनुवाद—सारे पापोंके न करना, पुण्य के सचय करना अपने
 चित्तमें परिशुद्ध करना यह है बुद्धोंकी शिक्षा ।

वेतव्य

आवन्द् (वेर)

१८४-सस्ती परम तपो तित्तिक्का,
 निब्बाराणं परम ववन्ति बुद्धा ।
 महि पब्बजितो परुपघाती,
 समरपो होति परं विहेठयन्तो ॥ ६ ॥

(ज्ञान्तिः परमं तपः तित्तिक्का निर्बाणं परमं ववन्ति बुद्धाः ।
 महि प्रव्रजिताः परोपघाती धमसो भवन्ति परं विहेठयन् ॥६॥)

१८५-अनुपवावो अनुपघातो पातिमोक्खे च सबरो ।
 मत्तब्भुता च मत्तस्मि पत्तब्भ सयनासम ।
 अधिधित्ते च आयोगो एतं बुद्धान सासनं ॥७॥

(अनुपवादोऽनुपघातः प्रातिमोक्खे च संवरः ।
 मत्तब्भुता च मत्ते प्राप्ती च सयनासनम् ।
 अधिधित्ते चायोग एतद् बुद्धानां शासनम् ॥७॥)

अनुवाद—समा परम तप, और तित्तिज्ञा है, बुद्ध निर्वाण को परम (= उत्तम) बतलाते हैं, दूसरे का घात करनेवाला; दूसरे-को पीड़ित करनेवाला प्रव्रजित (= गृहत्यागी), श्रमण (= संन्यासी) नहीं हो सकता । निन्दा न करना, घात न करना, प्रातिमोक्ष (= भिक्षु-नियम, आचार-नियम) द्वारा अपने को सुरक्षित रखना, परिमाण जानकर भोजन करना, एकान्त में सोना-बैठना (= शयनासन = निवासगृह); धित्त को योग में लगाना, यह बुद्धोंकी शिक्षा है ।

नेतवन

(उदास भिक्षु)

१८६—न कहापणावस्सेन तित्ति कामेसु विज्जति ।

अप्पस्सादा दुखा कामा इति विज्जाय पण्डितो ॥८॥

(न कार्पाणवर्षेण तृप्ति कामेषु विद्यते ।

अल्पास्वादा दु ख कामा इति विशाय परिडतः ॥८॥)

१८७—अपि दिब्बेसु कामेसु रति सो नाधिगच्छति ।

तण्हक्खयरतो होति सम्मासम्बुद्धसावको ॥९॥

अपि दिव्येषु कामेषु रतिं सनाऽधिगच्छति ।

तृष्णाक्षयरतो भवति सम्यक्संबुद्धश्रावक ॥९॥)

अनुवाद—यदि रूप्यों (= कहापण की वर्षों हो, तो भी (मनुष्य) की कामों (= भोगों) से तृप्ति नहीं हो सकती । (सभी) काम (= भोग) अल्प स्वाद, (और) दु खद हैं ऐसा जानकर पण्डित देवताओं के भोगों में भी रति नहीं करता, और सम्यक्संबुद्ध (= बुद्ध) का श्रावक (= अनुयायी) तृष्णा-को नाश कराने में लगता है ।

श्लोक

अथर्व (भाष्य)

१८८—बहुं वे शरणं यन्ति पर्वतानि पवनानि च ।

प्रारामद्वयक्षेत्र्यानि मनुस्ता भयतश्चिता ॥ १०॥

(बहु वै शरणं यन्ति पर्वतान् पवनानि च ।

आयमबुद्धक्षेत्र्यानि मनुष्या भयतश्चिताः ॥१॥)

१८९—नेतं सो शरणं नेतं नतं शरणमुत्तम ।

नेतं शरणमागम्य सञ्चरुक्त्वा पमुच्यति ॥११॥

(नेतत् बहु शरणं नेतत् शरणमुत्तमम् ।

नेतत् शरणमागम्य सर्वाङ्गुःशात्रमुच्यते ॥११॥)

अनुवाद—मनुष्य भय के मारे पक्ष वर प्राराम (= बचाव), बुद्ध
क्षेत्र (= बौरा) (आदि को देखता मात्र बन्धी) शरण के
आते हैं, किन्तु वे शरण मंस्कृतवाक्य नहीं, वे शरण
वचन नहीं, (क्योंकि) इन शरणों में आकर सब दुःखों के
सुखभरा नहीं मिचता ।

श्लोक

अथर्व (भाष्य)

१९०—योचबुद्धञ्च वम्मञ्च सञ्चञ्च शरणं गतो ।

वस्तारि धरियसञ्चानि सम्मप्यञ्चाय

पस्तति ॥१२॥

(यञ्च बुद्धं च धर्मं च सचं च शरणं गतो ।

वस्तारिधरियसञ्चानि सम्मप्यञ्चाय पस्तति ॥१२॥)

१९१—दुक्खं दुक्खसमुप्यार्थं दुक्खस्तं च धतिवकर्म ।

धरियञ्च'ठठञ्चकं मगं दुक्खूपसमयामिनं ॥१३॥

(दुःख दुःखसमुत्पादं दुःखस्य चातिक्रमम् ।
 आर्याष्टांगिकं मार्गं दुःखोपशमगामिनम् ॥१३॥)

१९२—एतं खो गरणं खेमं एतं सरणमुत्तमं ।

एतं सरणमागम्म सब्बदुक्खा पमुच्चति ॥४॥

(एतत् खलु शरणं क्षेमं एतत् शरणमुत्तमम् ।

एतत् शरणमागम्य सर्वदुःखात् प्रमुच्यते ॥१४॥)

अनुवाद—जो बुद्ध (= परमज्ञानी), धर्म (= सत्यज्ञान) और सघ (= परमज्ञानियोंके अनुयायियोंके समुदाय) की शरण गया, जो चारों आर्यसत्यों* को प्रज्ञासे भलीप्रकार देखता है। (वह चार सत्य हैं— (१) दुःख, (२) दुःखकी उत्पत्ति, (३) दुःखका अतिक्रमण, और (४, दुःख नाशक) आर्य-अष्टांगिक मार्ग*—जो कि दुःखको शमनकरनेकी ओर ले जाता है, ये हैं मंगलप्रद शरण, ये हैं उत्तम शरण, इन शरणोंको पाकर (मनुष्य) सारे दुःखोंसे छूठ जाता है।

क्षेतवन

आनन्द (धेर) का प्रश्न

१६३—दुल्लभो पुरिसाजञ्जो न सो सब्बत्थ जायति ।

यत्थ सो जायती धीरो तं कुलं सुखमेवति ॥१५॥

दुःख, उसका कारण, उसका नाश, और नाशका उपाय—यह बुद्ध द्वारा आविष्कृत चार उत्तम सच्चाइयाँ हैं ।

*आर्य-अष्टांगिक मार्ग है—ठीक धारणा, ठीक सकल्प, ठीक वचन, ठीक कर्म, ठीक जीविका, ठीक उद्योग ठीक स्मृति, और ठीक ध्यान ।

(कुलमः पुटपाणामेयो न स सर्वत्र जायते ।
यत्र स जायते धीरं तत् कुलं सुखमेधते ॥१५॥)

अनुवाद—उत्तम पुरुष कुलम है वह सर्वत्र उत्पन्न नहीं होता। वह धीर (पुरुष) नहीं उत्पन्न होता है वस कुलमें सुखमें वृद्धि होती है ।

वेतवण

बहुलये भिद्दु

१६४—सुखो बुद्धानं उप्पाबो सुखा सद्धम्मवेसमा ।
सुखा सघस्स सामग्गी समग्गाम तपो सुखो ॥६॥
(सुखो बुद्धानां उत्पादः सुखा सद्धर्म-वेसमा ।
सुखा संघस्य सामग्गी समग्गानां तपो सुखम् ॥१६॥)

अनुवाद—सुखवाचक है बुद्धोंका जन्म सुखवाचक है अपने धर्मका उपदेश, संघमें एकठा सुखवाचक है और सुखवाचक है एकठासुख हो तपो करना ।

चारिणाकं समप

कस्तप बुद्धया सुखं वैज

१६५—पूजारहे पूजयतो बुद्धे यदि ष सावके ।
पपञ्चसमतिककन्से तिष्णासोकपरिह्वये ॥ १७ ॥
(पूजाहान् पूजयतो बुद्धान् यदि वा धावकात् ।
प्रपञ्चसमतिक्रान्तान् नीर्लशोकपरिह्वयान् ॥१७॥)

१६६—से साविसे पूजयतो निम्बुते अकृतोभये ।
न सक्का पुञ्ज सक्कात्तु इमेसम्पि केमणि ॥१८॥

(तान् तादृशान् पूजयतो निर्वृतान् अकुतोभयान् ।
न शस्य पुण्यं संख्यातुं एवम्मात्रमपि केनचित् ॥१८॥)

अनुवाद—पूजनीय पुद्गलों, अथवा (उनके) अनुगामियों—जो संसार को अतिक्रमणकर गये हैं, जो शोक भयको पारकर गये हैं—की पूजाके, (या) उन ऐसे मुक्त और निर्भर (पुरुषों) की पूजाके, पुण्यका परिमाण “इतना है”—यह नहीं कहा जा सकता ।

१४-बुद्धवर्ग समाप्त

१५—सुखवग्गो

शाल्य धार

अति-कथाहरे वस्त्रमवर्ष

- १६७—सुसुखं वत । जीवाम धेरिनेसु अवेरिनो ।
 धेरिनेसु मनुस्सेसु विहराम अवेरिनो ॥१॥
 (सुसुखं वत । जीवामो धेरिण्णधेरिणः ।
 धेरिणु मनुप्पेणु विहरामोऽधेरिणः ॥१॥)
- १६८—सुसुखं वत । जीवाम आतुरेसु अनातुरा ।
 आतुरेसु मनुस्सेसु विहराम अनातुरा ॥२॥
 (सुसुखं वत । जीवाम आतुरेण्णनातुरा ।
 आतुरेणु मनुप्पेणु विहरामोऽनातुरा ॥२॥)
- १६९—सुसुखं वत । जीवाम उत्सुकेसु अमुत्सुका ।
 उत्सुकेसु मनुस्सेसु विहराम अमुत्सुका ॥३॥
 सुसुखं वत । जीवाम उत्सुकेण्णमुत्सुका ।
 उत्सुकेणु मनुप्पेणु विहराम अमुत्सुका ॥३॥

अनुवाद—वैरियोंके प्रति (भी) अवैरी हो, अहो ! हम (कैसा) सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; वैरी मनुष्योंके बीच अवैरी होकर हम विहार करते हैं । भयभीत मनुष्योंमें अभय हो, अहो ! हम सुखपूर्वक जीवन बिता रहे हैं; भयभीत मनुष्योंके बीच निर्भय होकर हम विहार करते हैं । उस्तुकों (= आसक्तो) में उस्तुक्ता-रहित हो० ।

पचसाला (ब्राह्मणग्राम, मगध)

मार

२००—सुसुख वत ! जीवाम येस नो नत्थि किञ्चनं ।
 प्रीतिभक्खा भविस्साम देवा आभास्सरा यथा ॥४॥
 (सुसुखं वत ! जीवामो येषां नो नास्ति किञ्चन ।
 प्रीतिभक्ष्या भविष्यामो देवा आभास्वरा यथा ॥४॥)

अनुवाद—जिन हम (लोगों) के पास कुछ नहीं, अहो ! वह हम कितना सुखसे जीवन बिता रहे हैं । हम आभास्वर देवताओं की भाँति प्रीतिभक्ष्य (= प्रीति ही भोजन है जिनका) हैं ।

षेतवन

कोसलराज

२०१—जय वेर पसवति दुक्खं सेति पराजितो
 उपसन्तो सुखं सेति हित्त्वा जयपराजयं ॥५॥
 (जयो वैरं प्रसूते दुक्खं शेते पराजित ।
 उपशान्तः सुखं शेते हित्त्वा जयपराजयौ ॥५॥)

अनुवाद—विजय वैरको उत्पन्न करती है, पराजित (पुरुष) दुःखकी (नींद) सोता है; (राग आदि दोष जिह्मके) शान्त (हैं,

यह पुष्प) जब और पराजयको जोष मुकामी (बीच)
सोता है।

वेतपत्र

कोई मुकामना

२०२—नत्थि रागसमो अग्नि, नत्थि दोससमो कलि ।
नत्थि सन्धसमा बुकस्ता नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥६॥
(नास्ति रागसमोऽग्निः नास्ति द्वेषसमः कलिः ।
नास्ति सन्धसमा बुकस्ता, नास्ति शान्तिपरं सुखम् ॥६॥)

अनुवाद - रागके समान अग्नि नहीं द्वेषके समान मल नहीं, (पाँच)
रुग्णों (= समुदाय) के समान बुक नहीं, शान्तिके
बनकर सुख नहीं ।

बाहरी

एक परासक

२०३—त्रिषण्ड्या परमा रोगा, सङ्घारा परमा बुक्ता ।
एतं अत्वा यथाभूतं निर्वाणं परमं सुखं ॥७॥
(त्रिषण्ड्या परमो रोगः, संस्कारा परम बुक्ताम् ।
एतद् अत्वा यथाभूतं निर्वाणं परम सुखम् ॥७॥)

अनुवाद—मूल सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े बुक है

जब वेदना सदा संस्कार, विज्ञान यह बीच रुग्ण है। वेदना,
संज्ञा संस्कार विज्ञानके धाम्तर हैं। प्रथिपी जब अग्नि, बाहु ही कप
रुग्ण है। जिसमें न धारीपन है, और जो न जगह घेरता है, यह विज्ञान
रुग्ण है। कप (= Matter) और विज्ञान (= Mind) इन्हींके
मेकसे सारा संसार बना है।

यह जान, यथार्थ निर्वाण को सबसे बड़ा सुख (कहा जाता) है ।

जेतवन

(पसेनदि कोसलराज)

२०४—अरोग्यपरमा लाभा सन्तुठ्ठी परमं धनं ।

विस्सासपरमा जाती निब्बाण परमं सुखं ॥८॥

(आरोग्यं परमो लाभः, सन्तुष्टिः परमं धनम् ।

विश्वासः परमा ज्ञातिः, निर्वाणं परमं सुखम् ॥८॥)

अनुवाद—निरोग होना परम लाभ है, सन्तोष परम धन है, विश्वास
समसे बड़ा बन्धु है, निर्वाण परम (= सबसे बड़ा) सुख है ।

वैशाली

तिस्स (थेरी)

२०५—प्रविवेकरसं पीत्वा रसं उपशमस्स च ।

निर्दरो होति निष्पापो धम्मपीतिरसं पिवं ॥९॥

(प्रविवेकरसं पीत्वा रसं उपशमस्य च ।

निर्दरो भवति निष्पायो धर्मपीतिरसं पिवन् ॥९॥

अनुवाद—एकान्त (चिन्तन) के रस, तथा उपशम (= शान्ति) के
रसको पीकर (पुरुष), निर्दर होता है, (और) धर्म का
प्रेमरस पानकर निष्पाप होता है ।

वेलुवग्राम (वेणुग्राम, वैशाली के पास)

सक (देवराज)

२०६—साधु दस्सनमरियानं सन्निवासो सदा सुखो ।

अदस्सनेन बालानं निच्चमेव सुखी सिया ॥१०॥

बह पुण्य) बय और पराजयको जोष सुखी (वीर)
सोता है ।

बेतवव

कोई दुःखपणा

२०२—नत्थि रागसमो अग्नि, नत्थि दोससमो कलि ।

नत्थि लस्यसमा बुकखा नत्थि सन्तिपरं सुखं ॥६॥

(नास्ति रागसमोऽग्नि नास्ति द्वेषसमाः कलिः ।

नास्ति स्कन्धसमा बुक्खा, नास्ति शान्तिपरं सुखम् ॥६॥)

अनुवाद - रागके समान अग्नि नहीं होनेके समान मल नहीं, (पाँच)
स्कन्धों (=समुदाय) के समान दुःख नहीं, शान्तिके
बदकर सुख नहीं ।

आखयी

एक बपासक

२०३—मिषच्छा परमा रोघा, संस्कारा परमा बुखा ।

एत अत्वा यथामूर्तं निर्वार्यं परमं सुखं ॥७॥

(मिषत्सा परमो रोगः, संस्काराः परमं बुखम् ।

एतद् अत्वा यथामूर्तं निर्वार्यं परमं सुखम् ॥७॥)

अनुवाद—मूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं

इस बेदना संज्ञा संस्कार, विज्ञान वह पाँच स्कन्ध हैं । बेदना,
संज्ञा संस्कार विज्ञानके अन्धर हैं । छविही बल अग्नि, वायु ही पर
रक्षक है । अग्निमें न घारीपन है, और जो ब लगाइ बेरता है, वह विज्ञान
स्कन्ध है । क्य (= Matter) और विज्ञान (= Mind) इन्हींके
मेडके सारा संसार बना है ।

(तस्माद्धि धीरं च प्राज्ञं च बहुश्रुतं च
 धुर्यशीलं घतवन्तमार्यम ।
 तं तादृशं सत्पुरुषं सुमेधसं
 भजेत नक्षत्रपथमिव चन्द्रमा ॥१२॥)

अनुवाद—इसलिये धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, उद्योगी, घती, आर्य एवं सुबुद्धि सत्पुरुषको जैसे ही सेवन करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-पथका (सेवन करता है) ।

१५—सुखवर्ग समाप्त

(साधु दर्शनमार्याणां सभिवासाः सदा सुखाः ।
अदर्शनेन बालानां नित्यमेव सुखी स्यात् ॥१॥)

२०७—वाससगतिचारी हि वीघमध्वानं सोचति ।
बुधसो बामेहि संवासो अमितेमेव सम्बवा ।
धीरो च सुखसंवासो आतीम 'व समागमो ॥११॥
(बालसंगतिचारी हि वीघमध्वानं सोचति ।
बुधो बालैः संवासोऽमित्रेष्वेव सर्वथा ।
धीरस्य सुखसंवासो शक्तीनामिव समागमा ॥११॥)

अनुवाद—आर्यो ३ (= सन्तुष्टों का दर्शन सुन्दर है सन्तो के साथ
मित्रास सदा सुखदायक होता है, मूर्खों के व दर्शन होने से
(मनुष्य) सदा सुखी रहता है । मूर्खों की शक्ति में रहने
वाला वीघं कब तक शोक करता है, मूर्खों का सहचार
गुरुही तरह सदा दुःखदायक होता है बन्तुष्टों के समग्रम-
की भाँति धीरो का सहचार सब्द होता है ।

बेहृत्पाम

सख (देवराज)

२०८—तस्मा हि धोरं च पञ्चअञ्च बहु-स्तुतं च
धोरय्हसील वसवन्तमरिम ।
तं तादिसं सप्पुरिसं सुमेधं
भजेय नक्कसपय 'व चन्दिमा ॥१११॥

*निर्वाणके पय पर अविचल कसते आरुण सोतप्रापण, लङ्कागामी, जना
पायी तथा निर्वाण प्राप्त अर्हत् इन चार प्रकारके पुण्यीको धार्य करते हैं ।

(तस्माद्धि धीरं च प्राज्ञं च बहुश्रुतं च
 धुर्यशीलं व्रतवन्तमार्यम ।
 तं तादृशं सत्पुरुषं सुमेधसं
 भजेत नक्षत्रपथमिव चन्द्रमा ॥१२॥)

अनुवाद—इसलिये धीर, प्राज्ञ, बहुश्रुत, उद्योगी, व्रती, आर्य एव
 सुबुद्धि सत्पुरुषको वैसे ही सेवन करे, जैसे चन्द्रमा नक्षत्र-
 पथका (सेवन करता है) ।

१५—सुखवर्ग समाप्त

१६—पियवग्गो

केतव्य

तीव लिषु

- २०६—अयोगे युञ्जमस्तानं योगस्मिञ्च अरोजयं ।
 अत्य हित्वा पियग्माही पिहेत'सानुयोगिन ॥ १ ॥
 (अयोगे युञ्जन्मात्मानं योगे चायोजयन् ।
 अत्यं हित्वा प्रिय-ग्राही स्पृहयेत्तानुयोगिनम् ॥१॥)
- २१०—मा पियेहि समागच्छि अप्पियेहि कुवाधनं ।
 पियान अहस्तुत्तं तुक्कसं अप्पियामञ्च वस्तुत्तं ॥ २ ॥
 (मा प्रियैः समागच्छ अप्रियैः कदाचन ।
 प्रियाणां अदर्शनं दुःखं, अप्रियाणां च दर्शनम् ॥२॥)
- २११—तस्मा पियं न कयिराष पियापायो हि पापको ।
 गन्था तेसं न विञ्जन्ति येसं नरिय पियाप्पियं ॥ ३ ॥
 (तस्मात् प्रियं न कुर्यात्, प्रियापायो हि पापकः ।
 प्रन्थाः तेषां न विद्यन्ते येषां नास्ति प्रियाप्रियम् ॥३॥)

अनुवाद—अयोग (= अनासक्ति) में अपने को लगानेवाले, योग (= आसक्ति) में न योग देनेवाले, अर्थ (= स्वार्थ) छोड़ प्रिय का ग्रहण करनेवाले आत्माऽनुयोगी (पुरुष) की स्पृहा करे। प्रियों का रग मत करो, और न कभी अप्रियों ही (फा रंग करो), प्रियों का न देखना दु खद होता है, और अप्रियों का देखना (भी)। इसलिये प्रिय न बनावे, प्रियका नाश घुरा (लगता है), उनके (दिल में) गाँठ नहीं पड़ती, जिनके प्रिय अप्रिय नहीं होते।

ब्रह्मवचन

कोई कुटुम्बी

२१२—पियतो जायते सोको पियतो जायते भयं ।

पियतो विष्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ? ॥४॥

(प्रियतो जायते शोकः प्रियतो जायते भयम् ।

प्रियतो विप्रमुक्तस्य नास्ति शोकः कुतो भयम् ॥४॥)

अनुवाद—प्रिय (वस्तु) से शोक उत्पन्न होता है, प्रिय से भय उत्पन्न होता है, प्रिय (के बन्धन) से जो मुक्त है, उसे शोक नहीं है, फिर भय कहाँ से (हो) ?

ब्रह्मवचन

विशाखा (उपासिका)

२१३—प्रेमतो जायते सोको प्रेमतो जायते भय ।

प्रेमतो विष्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भय ? ॥५॥

(प्रेमतो जायते शोकः प्रेमतो जायते भयम् ।

प्रेमतो विप्रमुक्तस्य नाऽस्ति शोकः कुतो भयम् ? ॥५॥)

अनुवाद—मेम से शोक उत्पन्न होता है मेम से भय उत्पन्न होता है,
मेम से मुकामे शोक नहीं फिर भय क्यों से ?

वैशाखी (कृत्यगारणाया)

विष्णुवि शोच

२१४—रतिया जायते सोको रतिया जायते भयं ।

रतिया विष्णुमुत्तस्त नत्वि सोको कुतो भयम् ॥६॥

(रत्या जायते शोको रत्या जायते भयम् ।

रत्या विष्णुमुत्तस्त नास्ति शोका कुतो भयम् ॥६॥)

अनुवाद—रति(- राग) से शोक उत्पन्न होता है, रति से भय उत्पन्न
होता है ।

वैशख

अविष्णुमुत्तस्त

२१५—कामतो जायते सोको कामतो जायते भयं ।

कामतो विष्णुमुत्तस्त नत्वि सोको कुतो भयं ॥७॥

(कामतो जायते शोका कामतो जायते भयम् ।

- कामतो विष्णुमुत्तस्त नास्ति शोका कुतो भयम् ? ॥७॥)

अनुवाद—काम से शोक उत्पन्न होता है ।

वैशख

कोई प्राणव

२१६—तण्हाय जायते सोको तण्हाय जायते भयं ।

तण्हाय विष्णुमुत्तस्त नत्वि सोको कुतो भयं ? ॥८॥

(तण्हाया जायते शोका तण्हाया जायते भयम् ।

तण्हाया विष्णुमुत्तस्त नास्ति शोका कुतो भयम् ? ॥८॥)

अनुवाद—तृप्यासे शोक उत्पन्न होता है० ।

राजगृह (वेशुवन)

पाँच सौ बालक

२१७—शीलदस्सनसम्पन्नं धम्मट्ठ सच्चवादिनं ।

अत्तनो कम्म कुब्बानं तं जनो कुरुते पियं ॥६॥

(शीलदर्शनसम्पन्नं धर्मिष्ठं सत्यवादिनम् ।

आत्मनः कर्म कुर्वाणं तं जनः कुरुते प्रियम् ॥६॥)

अनुवाद—जो शील (= आचरण) और दर्शन (= विद्या) से सम्पन्न, धर्ममें स्थित, सत्यवादी और अपने कामको करनेवाला है, उस (पुरुष) को लोग प्रेम करते हैं ।

वेतवन

(अनागामी)

२१८—छन्दजातो अनक्खाते मनसा च फुटो सिया ।

कामेसु च अप्पटिवद्धचित्तो उद्धंसोतो'-

ति वुच्चति ॥१०॥

(छन्दजातोऽनाख्याते मनसा च स्फुरित स्यात् ।

कामेषु चाऽप्रतिवद्धचित्त ऊर्ध्वस्रोता इत्युच्यते ॥१०॥)

अनुवाद—जो अकथ्य (= वस्तु = निर्वाण) का अभिलाषी है, (उसमें) जिसका मन लगा है, कामो (= भोगों) में जिसका चित्त बद्ध नहीं, वह ऊर्ध्वस्रोत कहा जाता है ।

अपिपतन

नन्दिपुत्त

२१९—चिरप्पवासि पुरिस दूरतो सोत्थिमागतं ।

जातिमित्ता सुहज्जा च अभिनन्दन्ति आगतं ॥११॥

(चिरप्रवास्तिम पुरुष दूरतो स्वस्थागतम् ।
 प्रातिमित्राणि सुहृदश्चाऽनिमन्दस्त्यागतम् ॥११॥)

१२०—तथैव कृतपुञ्जम्पि अस्मा लोका परं गतं ।
 पुञ्जामि पतिगण्ठन्ति प्रियं आतीव आगतं ॥१२॥

(तथैव कृतपुण्यमन्यत्मात् लोकात् परं गतम् ।
 पुण्यानि प्रतिगुणन्ति प्रियं आतिमिवागतम् ॥१२॥)

अमुनाद—चिर-प्रवासी (= चिर काल तक परदेशमें रहे) दूर (देश)
 से सामान्य ज्ञाने पुरुषका, प्रातिबाणे, मित्र और सुहृद अर्थात्
 बन्धु करते हैं; इसी प्रकार पुण्यकर्मा (दूरप) को इस
 लोके पर (लोक) में आयेपर (असत्) पुण्य (कर्म) मित्र
 प्राति (बाणी) की भाँति स्वीकार करते हैं ।

१६—प्रियवर्ग समाप्त

१७—कोधवग्गो

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम)

रोहिणी

२२१-कोधं जहे विप्पजहेय्य मान

सञ्जोजनं सब्बमतिक्रमेय्य ।

तं नाम-रूपस्मि असञ्जमान

अकिञ्चन नानुपतन्ति दुक्खा ॥१॥

(क्रोधं जह्याद् विप्रजह्यात् मानं

संयोजनं सर्वमतिक्रमेत् ।

तं नाम-रूपयोरसञ्जमानं

अकिञ्चनं नाऽनुपतन्ति दुःखानि ॥१॥)

अनुवाद—क्रोधको छोड़े, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (= बंधनों) से पार हो जाये, ऐसे नाम-रूपमें आसक्त न होनेवाले, तथा परिग्रहरहित (पुरुष) को दुःख सन्ताप नहीं देते ।

आह्वयी (धम्मपाण्डव चैव)

कोई मिष्ट

२२२—यो वे उप्पत्तितं कोध रय भन्त' व धारये ।

समहो सारथिं वृमि रस्मिग्गाहो इतरो जमो ॥२॥

यो वे उप्पत्तितं कोध रयं भास्तमिब धारयेत् ।

समहं सारथिं व्रवीमि, रस्मिग्गाह इतरो जना ॥२॥

अनुवाद—जो कभी क्रोधको प्रमत्त करते रहनी मति नकव से,
पसे मैं धारणी कहता हूँ, दूसरे लोग ह्याम पकवनेपण्ये
(मान) है ।

राजगृह (वैशुपत)

उचता (उपासिष्य)

२२३—अक्रोधेन जिने कोधं असाधुं प्रायुना विने ।

जिने कवरिय वानेन सज्जेन असिकवादिनं ॥३॥

अक्रोधेन जयेत् कोधं असाधुं सायुजा उपेत ।

जयेत् कवरियं वानेन सत्येनाऽऽसीकवादिनम् ॥३॥

अनुवाद—अक्रोधसे क्रोधको जीते, असाधुको साधु (= सदाई) से
जीते कनकको वाकसे जीते सूठ बोधनेवालेको सज्जे
(जीते) ।

वेत्तव

महामोमहाव (वेर)

२२४—सज्जं ममे न कुम्भेय्य, इज्जा'प्वस्मिम्पि

याचितो ।

एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे वेवान सस्तिके ॥४॥

(सस्यं मयेत् न कुम्भेय्य, इज्जा'प्वस्मिपि याचिता ।

एतेस्विमि स्थानी गच्छेप् वेवानामस्तिके ॥४॥)

अनुवाद—सच बोले, क्रोध न करे, थोड़ा भी माँगने पर टे, इन तीन बातोंसे (पुरुष) देवताओंके पास जाता है ।

साकेत = अयोध्या)

वाटण

२२५—अहिंसका ये मुनयो निच्चं कायेन सवृता ।

ते यन्ति अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे ॥५॥

(अहिंसका ये मुनयो नित्यं कायेन सवृता ।

ते यन्ति अच्युतं स्थानं यत्र गत्वा न शोचन्ति ॥५॥)

अनुवाद—जो मुनि (लोग) अहिंसक, सदा कायामें सयम करनेवाले हैं, वह (उस) अच्युत स्थान (= जिस स्थान पर पहुँच फिर गिरना नहीं होता) को प्राप्त होते हैं, जहाँ जाकर फिर नहीं शोक किया जाता ।

राजगृह (गृध्रकूट)

राजगृह-श्रेणीका पुत्र

२२६—सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिन ।

निब्बाराणं अधिमुत्तानं अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥६॥

(सदा जाग्रता अहोरात्र अनुशिद्धमाणानाम् ।

निर्वाणं अधिमुत्तानां अत्थं गच्छन्ति आसवा ॥६॥)

अनुवाद—जो सदा जागता (= सचेत) रहता है, रातदिन (उत्तम) सीख सीखनेवाला होता है, और निर्वाण (प्राप्त कर) मुक्त हो गया है, उसके आसव (= चित्त मल) अस्त हो जाते हैं ।

चेतवन

धनुज (वपासक)

२२७—पोराणमेतं अतुल ! मेतं अज्जतमामिष ।
 निम्बन्ति सुण्होमासीनं निम्बन्ति बहुभाणिमं ।
 मितभाणिमस्मि बिम्बन्ति
 नत्थि लोके अनिम्बितो ॥ ७ ॥

(पुराणमेतद् अतुल ! मेतद् अज्जतममेव ।
 निम्बन्ति सुण्होमासीनं निम्बन्ति बहुभाणिमम् ।
 मितभाणिममपि निम्बन्ति नाऽस्ति लोकेऽनिम्बितः ॥७॥

२२८—न चाहु न च भविस्सन्ति न चेतर्हि विज्जति ।
 एकन्त निम्बितो पोसो, एकन्तं वा पससितो ॥८॥
 (न चाऽभूत् न च भविष्यति न चैतर्हि विद्यते ।
 एकास्ति निम्बितः पुंस्य एकास्ति वा पससितः ॥८॥

अनुवाद—हे धनुज ! यह पुराणी बात है आजकी नहीं—(खोग) जब
 देहे हुये की निम्बा करते हैं और बहुत बोकनेवालीकी भी
 मितमाभी की भी निम्बा करते हैं हुकिबामें अनिम्बित कोई
 नहीं है । बिम्बुज ही निम्बित वा बिम्बुज ही पससित उरु
 न वा न होगा, न आजकल है ।

चेतवन

धनुज (वपासक)

२२९—यञ्चे विज्जु पसंसन्ति अनुविच्च सुवे सुवे ।
 अचिद्धवत्त मेधायि पञ्जासोलसमाहितं ॥९॥

(यश्चेद्ब्रु विज्ञा प्रशंसन्ति अनुविच्य श्व श्वः ।

अच्छिद्रवृत्ति मेधाविनं प्रज्ञाशीलसमूहितम् ॥६॥)

२३०-नेकख जम्बूनदस्येव कोऽस्त निन्दितुमरहति ।

(देवापि तं पसंसन्ति ब्रह्मणोऽपि पशसितो ॥१०॥

(निष्कं जम्बूनदस्येव कस्तिं निन्दितुमर्हति ।

देवा अपि तं प्रशसन्ति ब्रह्मणाऽपि प्रशसितः ॥१०॥)

अनुवाद—अपने अपने (दिलमें) जान कर विज्ञ लोग अच्छिद्र वृत्ति
(= दोपरहित स्थभाववाले) मेधावी, प्रज्ञाशील-सयुक्त
जिम (पुरुष) की प्रशसा करते हैं; जम्बूनद (सुवर्ण)
की अशर्फीके समान उसकी कौन निन्दा कर सकता है,
देवता भी उसकी प्रशसा करते हैं, ब्रह्माद्व रा भी वह प्रशसित
होता है ।

धेणुवन

वज्जिय (भित्तु)

२३१-कायप्रकोपं रक्खेय्य कायेन संवृतो सिया ।

कायदुच्चरितं हित्त्वा कायेन सुचरितं चरे ॥११॥

(कायप्रकोप रक्षेत् कायेन संवृत स्यात् ।

कायदुश्चरितं हित्त्वा कायेन सुचरितं चरेत् ॥११॥)

२३२-वचीप्रकोपं रक्खेय्य वाचाय संवृतो सिया ।

वचो दुच्चरितं हित्त्वा वचो सुचरितं चरे ॥१२॥

(वच प्रकोपं रक्षेद् वाचा संवृत स्यात् ।

वचो दुश्चरितं हित्त्वा वाचा सुचरितं चरेत् ॥१२॥)

- २३३—मनोव्यक्रोप एकसेम्य मनसा संवृतो सिया ।
 मनोबुधचरित हित्वा मनसा सुचरितं धरे ॥१३॥
 (मनः प्रकोपं रक्षेत् मनसा संवृतः स्यात् ।
 मनोबुधचरितं हित्वा मनसा सुचरितं धरेत् ॥१३॥)
- २३४—कायेन संबुता धीरा अयो वाचाम्य संबुता ।
 मनसा संबुता धीरा ते वै सुपरिसंबुता ॥१४॥
 (अयेन संबुता धीरा अय वाचा संबुता ।
 मनसा संबुता धीरा ते वै सुपरिसंबुता ॥१४॥)

अनुवाद—अवाणी बंधवतासे रक्षा करे, अयासे संवृत रहे कायिक
 बुधचरितको छोड़ कायिक सुचरितका आचरण करे । वाणी
 भी बंधवतासे रक्षा करे वाणीसे संवृत रहे वायिक
 बुधचरितको छोड़ वायिक सुचरितका आचरण करे । मन्सी
 बंधवतासे रक्षा करे मनसे संवृत रहे मानसिक बुधचरितको
 छोड़ मानसिक सुचरितका आचरण करे ।

१७—अधोवर्ग समाप्त

१८--मलवग्गो

चेतयन

गोघातक-पुत्र

२३५-पाण्डुपलासो'वदानिसि,

यमपुरिसापि च तं उपट्ठिता ।

उद्योगमुखे च तिट्ठसि

पाथेयमिच्च ते न विज्जति ॥१॥

(पाण्डुपलासमित्रेदानीमसियमपुरुपाश्रपिचत्वा उपस्थिता. ।

उद्योगमुखे च तिष्ठसि पाथेयमपि च ते न विद्यते ॥१॥)

२३६-सो करोहि दीपमत्तनो खिप्पं वायम पण्डितो भव ।

निद्धन्तमलो अनङ्गणो दिब्बं अरियभूमिमेहिसि ॥५॥

(स कुरु द्वीपमात्मन. क्षिप्र व्यायच्छस्व पण्डितो भव ।

निर्धूतमलोऽनंगणो दिव्यां आर्यभूमि एष्यसि ॥५॥)

अनुवाद—पीले पत्ते के समान इस वक्त तू है, यमदूत तेरे पास एदे हैं, तू प्रयाण के लिये त यार है और पाथेय तेरे पास कुछ नहीं है । सो तू अपने लिये द्वीप (—रक्षास्थान) बना, उद्योग कर, पढित बन, मल प्रक्षालित कर, दोष-रहित बन आर्यों के दिव्य पदको पायेगा ।

चेतवन

वाचातक पुत्र

२३७-उपनीतवयो च वामिसि

सम्प्राप्तोसि यमस्त सन्तिके ।

वासोपि आते नात्प्य अस्तरा

पाथेय्यन्वि च तेन बिज्जति ॥३॥

(उपनीतवयाइवानीमसि)

सम्प्राप्तोऽसि यमस्याऽन्तिके ।

वासोऽपि च ते पाऽन्ति अस्तरा

पाथेयमपि च तेन बिज्यते ॥३॥

२३८-सो करोहि वीपमसमो सिप्य वायम पण्डितो भव ।

निद्वस्तमसो अन्नङ्गणो न पुन जातिअरं उपेहिसि ॥४॥

(स कुट्ट वीपमात्मना सिप्य व्याच्छस्व पण्डितो भव ।

निद्वस्तमसोऽन्नङ्गणो न पुनजातिअरे उपेय्यसि ॥४॥)

अनुवाद—आपु ठेरी समाप्त हो गई वम के पास पहुंच चुका, निरास

(स्वाम) की ठेरा नहीं है (बाबा के) अन्न के द्विजे ठेरी

पास पायेन भी नहीं । सो तु अपने द्विजे ।

चेतवन

कोई ब्राह्मण ।

२३९-अनुपुञ्जेन मेधावी धोकधोकं सरतो सरतो ।

कम्मारो रजतस्सेव निद्वमे मज्जमसनो ॥५॥

(अनुपुञ्जेन मेधावी तोकं स्मोकं सपे सपे ।

कम्मारो रजतस्सेव निद्वमेत् मज्जमात्मना ॥५॥)

अनुवाद—दुग्धिमार् (पुत्र) जब जब कम्मः बोधा बोधा अपने

मज्जको (बीजे ही) (बजावे), वीधा कि सोवार चोरी के

(मज्जको) बजाता है ।

जैतवन

तित्स (धेर)

२४०-अयसा'व मलं समुठ्ठितं

तदुठ्ठाय तमेव खादति ।

एवं अतिघोनचारिनं

सानि कम्मानि नयन्ति दुर्गतिं ॥६॥

(अयस इव मलं समुत्थित त (स्मा) इ

उत्थाय तदेव खादति ।

एवं अतिधावनचारिणं स्वानि

कर्माणि नयन्ति दुर्गतिम् ॥६॥)

अनुवाद—लोहे से उत्पन्न मल (= मुर्चा) जैसे जिसी' से उत्पन्न होता है, उसे ही खा ढालता है, इसी प्रकार अति चंचल (पुरुष) के अपने ही कर्म उसे दुर्गति को ले जाते हैं ।

जैतवन

(लाल) उदायी (धेर)

२४१-असज्जायमला मन्ता अनुत्थानमला घरा ।

मलं वणस्स कोसज्जं पमादो रक्खतो मलं ॥७॥

(अस्वाध्यायमला मन्त्रा अनुत्थानमसा गृहा' ।

(मलं वर्णस्य कौसीद्यं, प्रमादो रक्षतो मलम् ॥७॥)

अनुवाद—स्वाध्याय (= स्वरपूर्वक पाठकी आवृत्ति) न करना (वेद-) मंत्रों का मल (= मुर्चा) है, (लीप पोत मरम्मत कर) न उठाना घरोंका मुर्चा है । शरीर का मुर्चा आलस्य है, असावधानी रक्षक का मुर्चा है ।

राजगृह (वेणुवन)

कोई कुलपुत्र

२४२-मलित्थिया दुच्चरितं मच्छेरं ददतो मल ।

मला वे पापका घस्मा अस्मिं लोके परमिह च ॥८॥

(मलं स्त्रिया बुद्धरितं मात्सर्यं दहतो मलम् ।
मलं वै पापञ्च घर्मा अस्मिन् शोके परञ्च ब्रह्मन् ॥ १० ॥)

२४३—ततो मला मलतर अविद्या परमं मल ।

एतं मलं पहस्वाम निम्मला ह्येष भिन्नवधौ ॥ ११ ॥

(ततो मलं मलतरं अविद्या परमं मलम् ।

एतद् मलं प्रहाय निर्मला भवति भिन्नवधौ ॥ ११ ॥)

अनुवाद—श्रीकृष्ण मल बुद्ध्या है बुद्धता (= बुद्धि) बाता का
मल है पाप इस लोक और पर (लोक बावों) में मल है
किर मलों में भी सबसे बड़ा मल—महायज्ञ का क्लेश है। है
भिन्नवधौ । इह (अविद्या) मल को त्याग कर निर्मल बनो ।

शेखर

(बुद्ध) धारि

२४४—सुधीव अहिरोकेन कारुसूरेण संसिना ।

पक्ष्मन्दिना पगडमेन संक्षिप्तद्वेण जीवितम् ॥ १० ॥

(सुधीवितं अहिरोकेण कर्करूपेण संसिना ।

परकन्दिना पगडमेन संक्षिप्तद्वेण जीवितम् ॥ १० ॥)

अनुवाद—(पापाचार के प्रति) विद्वान्, और समान (पार्थ में)
एतः (परद्वि-विवाशी पठित, कर्करूप और मक्षिण
(बुद्ध) का धीवन सुध पूर्वक शीतला (देखा जाता) है ।

शेखर

(बुद्ध) धारि

२४५—हिरीमता च बुद्धीव निवर्धं सुचिगवेतिना ।

असीनेन'पगडमेन सुधधाधोवेन पस्तता ॥ ११ ॥

(ह्रीमता च दुर्जीवितं नित्य शुचिगवेपिणा ।

श्रलीनेनाऽप्रगल्भेन शुद्धाजीवेन पश्यता ॥११॥)

अनुवाद—(पापाचारके प्रति) लज्जावान्, नित्य ही पवित्रताका ख्याल रखने वाले, निरालस, अनुच्छृंखल शुद्ध जीविका वाले सचेत (पुरुष) के जीवन को कठिनाई से भीतते देखते हैं ।

जेतवन

पाँच सौ उपासक

२४६—यो प्राणमतिपातेति मुसावदञ्च भासति ।

लोके अदिन्न आदियति परदारञ्च गच्छति ॥१२॥

(य. प्राणमतिपातयति मूत्रावादं च भाषते ।

लोकेऽदत्तं आदत्ते परादारांश्च गच्छति ॥१२॥)

२४७—सुरामैरेयपानञ्च यो नरो अनुयुञ्जति ।

इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खनति अत्तनो ॥१३॥

(सुरामैरेयपानं च यो नरोऽनुयुनक्ति ।

इधैवमेप लोके मूलं खनत्यामनः ॥१३॥)

२४८—एवं भो पुरिस! जानाहि पापधम्मा असञ्जता ।

मा तं लोभो अधम्मो च चिरं दुक्खाय रन्धयुं ॥१४॥

(एवं भो पुरुष ! जानीहि पापधर्माणोऽसयतान् ।

मा त्वां लोभोऽधर्मश्च चिरं दुक्खाय रन्धेरन् ॥१४॥)

अनुवाद—जो हिंसा करता है, झूठ बोलता है, लोकमें चोरी करता है (= बिना दियेको खेता है), परस्त्रीगमन करता है ।

जो पुण्य मघवानमें जान्य होता है वह इस मन्त्रर इती
 बोलमें अपनी बकवा छोड़ता है। हे पुण्य ! पापियों
 घसंयमियोंके नामें ऐसा जान, धीर मत तुझे बोल,
 जबम चिरकाल तक पुण्यमें रथि ।

बैतवन

तिस्र (बाणक)

२४९—वदन्ति वे यथासत्त्वं यथाप्रसादनं जनो ।
 तस्य यो मंक्तु भवति परेषु पानमोजने ।
 न सो दिवा वा रत्तिवा समाधिं अभिगच्छति ॥१२॥

(वदन्ति वै तथाभस्यं यथाप्रसादनं जनः ।
 तत्र यो मंक्तु भवति परेषां पानमोजने ।)
 न स दिवा वा रात्रौ वा समाधिं अभिगच्छति ॥१२॥)

२५०—यस्त व तं समुच्छिद्यन्न मूसघञ्चं समूहत् ।
 स वै दिवा वा रत्ति वा समाधिं अभिगच्छति ॥१३॥

(यस्य य तत् समुच्छिद्यन्न मूलप्रातं समुशतम् ।
 स वै दिवा रात्रौ वा समाधिं अभिगच्छति ॥१३॥)

अनुवाद—जोय अपनी अपनी बकवा धीर मघज्जताके अनुसार बात
 बोलें हैं वहाँ दूसराके जाने बीनेमें जो (असन्तोष के कारण)
 मूक होते हैं; वह रात दिन (कभी भी) समाधीबन्धी
 नहीं प्राप्त करता । (किन्तु) जिसका वह जब मूकसे ही
 तरह उच्छिन्न हो गया, वह रात दिन (सर्वदा) अज्ञान
 बाध को प्राप्त होता है ।

जेतवन

पाच उपासक

२५१—नत्थि रागसमो अग्नि नत्थि दोससमो गहो ।
 नत्थि मोहसमं जालं नत्थि तण्हासमा नदी ॥१७॥
 (नास्ति रागसमोऽग्निः नास्ति द्वेषसमो ग्रहः ।
 नास्ति मोहसमं जालं, नास्ति तृष्णा समा नदी ॥१७॥)

अनुवाद—राग के समान आग नहीं, द्वेषके समान ग्रह (=भूत,
 चुबैल) नहीं, मोह के समान जाल नहीं, तृष्णा के समान
 नदी नहीं ।

भद्वियनगर (जातियावन)

मेण्डक (श्रेष्ठी)

२५२—सुदस्स वज्जमञ्जेसं अत्तनो पन दुद्दसं ।
 परेसं हि सो वज्जानि ओपुणाति यथाभुस ।
 अत्तनो पन छादेति कलिं व कित्वा सठो ॥१८॥
 (सुदसं वद्यमन्येषां आत्मनः पुनर्दुर्दशम् ।
 परेषा हि स वद्यति अवपुणाति यथातुषम् ।
 आत्मनः पुन छादयति कलिमिव कित्वात् शठ ॥१८॥)

अनुवाद—दूसरे का दोष देखना आसान है, किन्तु अपना (दोष)
 देखना कठिन है, वह (पुरुष) दूसरों के ही दोषों को भुसकी
 भांति उड़ाता फिरता है, किन्तु अपने (दोषों) को वैसे ही
 ढाँकता है, जैसे शठ जुआरी से पासे को ।

जेतवन

उज्झानसञ्जी (थेर)

२५३—परवज्जानुपस्सित्स निच्चं उज्झानसञ्जिनो ।
 आसवा तस्स बड्ढन्ति आरा स आसवक्खया ॥१९॥

(परवत्ताऽभुविदित्तो मित्थं उदुप्प्यानसंत्तिनं ।
माससास्तस्य बद्धन्ते आराद् स भासवक्षयात् ॥१९॥)

अनुवाद—दूसरे के दोषों की कोख में रहने वाले, सदा हाव हाव करने वाले (पुण्य) के आखण (=विषमख) बंधते हैं, जो भासनों के विनाश से बुरा हवा हुआ है ।

कुशीनाग

(सुमह परिभाषक)

२५४—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।
पपञ्चाभिरता पक्खा निप्पपञ्चा सुभागता ॥२०॥
(आकाशे च पदं नाऽस्ति धमणो नाऽस्ति बहिः ।
प्रपञ्चाऽभिरता प्रक्खा निष्परपञ्चास्तबागता ॥२०॥)

२५५—आकासे च पदं नत्थि समणो नत्थि बाहिरे ।
सङ्कारा सस्सता नत्थि, नत्थि बुद्धानामिच्छित्तम् ॥२१॥
(आकाशे च पदं नाऽस्ति धमणो नाऽस्ति बहिः ।
सङ्कारा सास्सता न सन्ति
नाऽस्ति बुद्धानामिच्छित्तम् ॥२१॥)

अनुवाद—आकाशमें पद (=चिन्ह) नहीं बाहरमें धमण (=सन्ध्याधी) नहीं रहता लोग प्रपंच में बंधे रहते हैं, (चिन्ह) तथा गण (=कुद) प्रपंचरहित होते हैं ।

१८—पल्लवर्ग समाप्त

१६-धम्मट्ठवग्गो

जैतवन

विनिच्छयमहामच्च (= न्यायाधीश)

२५६-न तेन होति धम्मट्ठो येनत्थं सहसा नये ।

यो च अत्थं अनत्थञ्च उभो निच्छेय्य पण्डितो ॥१॥

(न तेन भवति धर्मस्थो येनार्थं सहसा नयेत् ।

यश्चाऽर्थं अनर्थं च उभौ निश्चिनुयात् पण्डितः ॥१॥)

२५७-असाहसेन धम्मेन समेन नयती परे ।

धम्मस्स गुत्तो मेधावी धम्मट्ठो'ति पवुच्चति ॥२॥

(असाहसेन धर्मेण समेन नयते परान् ।

धर्मेण गुप्तो मेधावी धर्मस्थ इत्युच्यते ॥१॥)

अनुवाद—सहसा जो अर्थ (= कामकी वस्तु) को करता है, वह धर्ममें अवस्थित नहीं कहा जाता । पण्डितको चाहिये कि वह अर्थ, अनर्थ दोनों को विचार (करके) करे ।

वेत्तव्य

वज्जिव (मिच्छु)

२५८—न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
सेमी अवेरी अमयो पण्डितो'ति पबुञ्चति ॥६॥

(न तावता पंडितो भवति यावता बहु भासते ।
जेमी अवेरी अमया पंडित इत्युच्यते ॥६॥)

अनुवाद—बहुत भासना करने से पंडित नहीं होता । जो जेम्पण्
अवेरी और अमय होता है वही पंडित कहा जाता है ।

वेत्तव्य

वज्जिव (वेर)

२५९—न तावता धम्मधरो यावता बहु भासति ।
यो थ अप्पम्मि सुत्थान धम्मं कायेन पस्सति ।
स वे धम्मधरो होति यो धम्म नप्पमञ्चति ॥७॥

(न तावता धर्मधरो यावता बहु भासते ।
यस्त्वाल्पमपि श्रुत्वा धर्मं कायेन पश्यति ।
स वै धर्मधरो भवति यो धर्मं न प्रमाद्यति ॥७॥)

अनुवाद—बहुत बोलने से धर्मधर (= धार्मिक ग्रन्थों का ज्ञाता) नहीं
होता जो थोड़ा भी सुनकर शरीर से धर्म का आचरण करता
है और जो धर्म में असावधानी (= प्रमाद) नहीं करता,
वही धर्मधर है ।

वेत्तव्य

वज्जिव (वेर)

२६०—न तेन धेरो होति येन'स्स पसित्तं सित्तो ।
परिपक्को वयो सस्स मोघमिण्णो'ति वुञ्चति ॥८॥

● न तेन बूढ़ा भवति । (मनु-भृति ।)

(न तेन स्थविरो भवति येनाऽस्य पलित शिर ।
परिपक्वं वयस्तस्य मोघजीर्णं इत्युच्यते ॥५॥)

अनुवाद—शिर के (बाल के) पकने से थेर (= स्थविर, वृद्ध) नहीं होता, उसकी आयु परिपक्व हो गई (सही), (किन्तु) वह व्यर्थका वृद्ध कहा जाता है ।

जेतवन

लकुण्टक महिय (थेर

२६१—यम्मिह सच्चञ्च धम्मो च अहिंसा सञ्जमो दमो ।

स वै वन्तमलो धीरो थेरो 'ति पवुच्चति ॥६॥

(यस्मिन् सत्यं च धर्मश्चाहिंसा संयमो दमः ।

स वै वान्तमलो धीर स्थविर इत्युच्यते ॥६॥)

अनुवाद—जिसमें सत्य, धर्म, अहिंसा, संयम और दम हैं, वही विगतमल, धीर और स्थविर कहा जाता है ।

जेतवन

कित्ते ही भिच्चु

२६२—न वाक्करणमत्तेन वण्णपोक्खरताय वा ।

साधुरूपो नरो होति इस्सुको मच्छरी सठो ॥७॥

(न वाक्करणमात्रेण वर्णपुष्कलतया वा ।

साधुरूपो नरो भवति ईर्षुको मत्सरी शठः ॥७॥)

२६३—यस्स चेतं समुच्छिन्न मूलघच्चं समूहतं ।

स वन्तदोसो मेघावी साधुरूपो 'ति वुच्चति ॥८॥

(यस्य चैतत् समुच्छिन्नं मूलघातं समुद्वतम् ।

स वान्तदोपो मेघावी साधुरूप इत्युच्यते ॥८॥)

अनुवाद—(यदि यह ईर्ष्याहृ, मत्सरी और ल० है, तो यह होने मात्र से, सुन्दर रूप होने से आदमी साहु-रूप नहीं होता है। जिसके यह लक्षणोंके विद्यमान उचित होने से ही जो किमल्लोच भेधाधी है वही साहु-रूप कहा जाता है।

श्लोक

इत्यत्र (मि०)

२६४—न मुञ्चकेन समर्यो ब्रह्मसो ब्रह्मिकं भणं ।

इच्छासोमसमापन्नो समर्यो किं भविस्तति ॥६॥

(न मुञ्चकेन ब्रह्मसो ब्रह्मिकं भणं मणम् ।

इच्छासोमसमापन्नो ब्रह्मसो किं भविष्यति ॥६॥)

२६५—यो च समेति पापानि भणं भूसानि सम्बसो ।

समितत्ता हि पापानां समर्यो 'ति पवुञ्चति ॥१०॥

(यद्यपि शमयति पापानि अस्तुनि स्युस्तानि सबशः ।

शमितत्वादि पापानां शमय इत्युच्यते ॥१०॥)

अनुवाद—जो ब्रह्मसोमसमापनी है वह मुञ्चकेत होने मात्र से ब्रह्मसो नहीं होता। इच्छा प्राप्त से परा (पुरुष) क्या ब्रह्मसो होगा? जो छोटे बड़े पापों को सर्वथा शमय करवेगया है। पापको शमित होने से ब्रह्मसो वह ब्रह्मसो (= ब्रह्मसो) कहा जाता है।

श्लोक

कोई भाष्य

२६६—न तेन भिक्खु (सो) होति धावता भिक्खते परे ।

विस्तस धम्मं समावाय भिक्खु होति न सावता ॥११॥

(न तावता भिन्नु [स] भवति यावता भिन्नुते परान् ।

विश्वं धर्मं समादाय भिन्नुर्भवति न तावता ॥११॥)

अनुवाद—दूसरोके पास जाकर भिन्ना माँगने मात्रसे भिन्नु नहीं होता,
(जो) सारे (बुरे) धर्मों (= कामों) को ग्रहण करता है
(वह) भिन्नु नहीं होता ।

जेतवन

कोई ब्राह्मण

२६७—यो'ध पुञ्जञ्च पापञ्च वाहित्वा ब्रह्मचरियवा ।

सङ्खाय लोके चरति स वै भिक्खू'ति वुच्चति ॥१२॥

(य इह पुण्यं च पापं च वाहयित्वा ब्रह्मचर्यवान् ।

संख्याय लोके चरित स वै भिन्नुरित्युच्यते ॥१२॥)

अनुवाद—जो यहाँ पुण्य और पापको छोड़ ब्रह्मचारी बन, ज्ञान के
साथ लोक में विचरता है, वह भिन्नु कहा जाता है ।

जेतवन

तीर्थिक

२६८—न मोनन मुनी होति मल्हूपो अविद्दसु ।

यो च तुलं' व पग्गय्ह वरमादाय पण्डितो ॥१३॥

(न मौनेन मुनिर्भवति मूढरूपोऽविद्वान् ।

यश्च तुलामिव प्रगृह्य वरमादाय पंडितः ॥१३॥)

२६९—पापानि परिवज्जेति स मुनी तेन सो मुनि ।

यो मुनाति उभो लोके मुनी तेन पवुच्चति ॥१४॥

(पापानि परिवर्जयति स मुनिस्तेन स मुनिः ।

यो मनुत उभौ लोकौ मुनिस्तेन प्रोच्यते ॥१४॥)

अनुवाद—अभिधान् और सूक्ष्माब् (पुत्र, सिद्ध) मीन होवे से मुनि नहीं होता, जो पंडित कि तुलाकी भांति पञ्चक, उचम (ठक) को प्रहृत कर, पर्योक्त परित्याग करता है वह मुनि है, और उक्त प्रकरसे मुनि होता है। वृत्ति यह दोनों हीकोक्य मगन करता है, इसलिये यह मणि कहा जाता है।

श्लोक

अरिष वाधिसिद्ध

२७०—न तेन अरियो होति येन पाष्यानि हिसति ।

अहिंसा सद्यपाणाम अरियोति पयुञ्जति ॥१५॥

(न तेनाऽऽर्यो भवति येन प्राणान् हिंसति ।

अहिंसया सर्वप्राणानां अर्य इति प्रोच्यते ॥१५॥)

अनुवाद—अभिषोको हनन करनेसे (कोई) आर्य नहीं होता, सभी प्राणियोंकी हिंसा न करने से (यह) आर्य कहा जाता है।

श्लोक

बहुतसे शौच-वादि-पुत्र मित्र

२७१—य सीमब्रह्मसेन ब्राह्मसञ्जेन वा पुन ।

अथवा समाभिलाभेन विविच्य शयनेन वा ॥१६॥

(य शीलव्रतमात्रेण ब्राह्मसुत्येन वा पुनः ।

अथवा समाभिलाभेन विविच्य शयनेन वा ॥१६॥)

२७२—कसामि नेवसम्मसुत्तं अपुपुञ्जमसेवितं ।

भिक्षू ! विस्वासमापादि अप्यसो प्रासब्रह्मस्यं ॥१७॥

(स्पृशामि नैष्कर्म्यसुखं अपृथग्जनसेवितम् ।
मिद्धो ! विश्वासं मा पादीः अप्राप्त आस्रवक्ष्यम् ॥१७॥)

अनुवाद- केवल शील और धतसे, बहुश्रुत होने (मात्र) से, या (केवल) समाधिलाभसे, या एकान्तमें शयन करनेसे, पृथग्जन (= अज्ञ] जिसे नहीं सेवन कर सकते, उस नैष्कर्म्य (= निर्वाण)-सुखका मैं अनुभव नहीं कर रहा हूँ! हे मिद्धो ! जब तक आस्रवा (= चित्तमलों) का क्षय न हो जाये, तब तक सुष न बैठे रगे ।

१६-धर्मस्थवर्ग समाप्त

२०—मग्गवग्गो

श्लोक

श्री ५ श्री मित्र

२७३-मग्गानदठङ्गिको सेट्ठो सञ्चानं चतुरो पवा ।
विरापो सेट्ठो भम्मानं द्विपवानञ्च चक्षुमा ॥१॥

(मार्गाशामाष्टांगिकः श्रेष्ठः सञ्चानो चत्वारि पदाणि ।
विरागः श्रेष्ठो धर्माणां द्विपवानां च चक्षुमान् ॥१॥)

२७४-एसो'ब मग्गो नत्प'ञ्चो वस्सनस्स विसुद्धिय ।
एत हि सुम्हे पटिपञ्चय मारस्सेतं पमोहन ॥२॥

(एष बो भार्यो नाऽस्त्यन्यो दर्शनस्य विसुद्धये ।
एतं हि धृतं प्रतिपद्यन् मारस्यैव प्रमोहनः ॥२॥)

अनुवाद—भार्यो में अष्टांगिक मार्ग श्रेष्ठ है सर्वो में चार पद (= चार धर्मसत्य) से ठ है धर्मों में वैराग्य श्रेष्ठ है द्विपवो (= मनुष्यों) में चक्षु माव (= ज्ञानप्रेरणाकारी बुद्ध) श्रेष्ठ है । दर्शन (ज्ञान) की विसुद्धिके लिये यही मार्ग है वृत्ता यही (विसुद्धि) इसीपर तुम ध्याय्य होओ यही मारको मुक्ति करने का साधन है ।

चेतवन

पाँच सौ भिषु

२७५—एतं हि तुम्हे पटिपन्ना दुक्खस्सन्तं करिस्सथ ।
अक्खातो वे मया मग्गो अञ्जाय सल्लसन्थनं ॥३॥

(एतं हि यूयं प्रतिपन्ना दुःखस्यान्तं करिष्यथ ।
आख्यातो वै मया मार्ग आञ्जाय शल्य-संस्थानम् ॥३॥)

२७६—तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता ।
पटिपन्ना पमोक्खन्ति भायिनो मारबन्धना ॥४॥

(युष्माभिः कार्यं आतप्यं आख्यातारस्तथागताः ।
प्रतिपन्नाः प्रमोक्ष्यन्ते ध्यायिनो मारबन्धनात् ॥४॥)

अनुवाद—इस (मार्ग) पर आरूढ़ हो तुम दुःखका अन्त कर सकोगे, (स्वयं) जानकर (राग आदिके विनाशमें) शल्य समान मार्गको मैंने उपदेश कर दिया । कार्य के लिए तुम्हें उद्योग करना है, तथागतों (= बुद्धों) का कार्य उपदेश कर देना है, (तदनुसार मार्गपर) आरूढ़ हो, ध्यान में रत पुरुष) मारके बन्धनसे मुक्त हो जायेंगे ।

चेतवन

पाँच सौ भिषु

[अनित्य-लक्षणम्]

२७७—सब्बे सङ्खारा अनित्त्वा 'ति यदा पञ्जाय पस्सति ।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥५॥

(सर्वे संस्कारा अनित्या इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्धये ॥५॥)

अनुवाद—सभी संस्कृत (= कृत विर्मित, बची) चीजों अस्ति हैं; यह सब प्रज्ञासे देखता है, सब सभी दुःखोंसे विवेक (= विराग) को प्राप्त होता है बची मार्ग (विच-) एवम् है ।

[सुख-लक्षणम्]

२७८—सर्वे सङ्घारा दुक्खा 'ति यदा पञ्चाय पस्सति ।
अथ निर्विण्णति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया ॥६॥

(सर्वे संस्कारा दुःखा इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विण्णति दुःखानि, एष मार्गो विमुच्यते ॥६॥)

अनुवाद—सभी संस्कृत (चीजें) दुःखमय हैं • ।

[अनात्म-लक्षणम्]

२७९—सर्वे धम्मा अनात्ता 'ति यदा पञ्चाय पस्सति ।
अथ निर्विण्णति दुक्खे एस मग्गो विसुद्धिया ॥७॥

(सर्वे धमा अनात्मान इति यदा प्रज्ञया पश्यति ।
अथ निर्विण्णति दुःखानि एष मार्गो विमुच्यते ॥७॥)

अनुवाद—सभी धम (= पदार्थ) बिना आत्मा के हैं ।

वेतवम

(बोली) तिष्ठ (बेर)

२८०—उद्वृत्तानकालमिहप्रमुद्वृत्तहानोपुषावसोप्राप्तसियंउपेतो
संघघ्नो सङ्कुप्पमनोकुसीतो पञ्चायमग्गंअसतोर्नाबिबसि ॥८॥

(उत्थानकालेऽनुत्तिष्ठन् युवा बली आलस्यमुपेत ।

संसन्न-संकल्प-मनाः कुसीदः

प्रज्ञया मार्गं अलसो न विन्दति ॥८॥)

अनुवाद—जो उठान (= उद्योग) के समय उठान न करनेवाला, युवा और बली होकर (भी) आलस्य से युक्त होता है, मनके संकल्पोंको जिसने गिरा दिया है, और जो कुसीदी (= दीर्घसूत्री) है, वह आलसी (पुरुष) प्रज्ञाके मार्गको नहीं प्राप्त कर सकता ।

राजगृह (वेणुवन)

(शूकर-प्रेत)

२८१—वाचानुरक्खी मनसा सुसवुतो

कायेन च अकुशलं न कथिरा ।

एते तयो कम्मपथे विशोधये

आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं ॥९॥

(वाचाऽनुरक्षी मनसा सुसंकृतः

कायेन चाऽकुशलं न कुर्यात् ।

एतान् त्रीन् कर्मपथान् विशोधयेत्,

आराधयेत् मार्गं ऋषिप्रवेदितम् ॥९॥)

अनुवाद—जो वाणी की रक्षा करनेवाला, मनसे सयमी रहे, तथ कायासे पाप न करे, इन (मन, वचन, काय) तीनों कर्म-पथोंकी शुद्धि करे, और ऋषि (= बुद्ध) के जतलाये धर्मका सेवन करे ।

वेतपत्र

रोष्ठि (वेर)

१८२—योगा वे जायती मूरि अयोगा भरिसङ्खयो ।
 एतं वेषापत्र अस्वा मवाय विमवाय च ।
 तथस्तानं निषेसेम्य यथा मूरि पदवृद्धति ॥१०॥
 (योगाद् वे जायते मूरि अयोगाद् मूरिसङ्ख्या ।
 एतं वेषापत्रं ज्ञात्वा मवाय विमवाय च ।
 तथाऽऽप्तमार्गं निषेधयेद् यथा मूरि प्रवर्धते ॥१॥)

अनुवाद—(मन्त्रे) योग (= संयोग) वे मूरि (= ज्ञान) उत्पन्न
 होता है अयोगसे मूरिभ्य रूप होता है । ज्ञान जैत
 विद्या के रूप हो प्रकारके मायी को जावकर, अपनेको एक
 प्रकार रखे, जिससे कि मूरिकी वृद्धि होवे ।

वेतपत्र

कोई वृद्ध विदु

१८३—वनं क्षिप्रं मा वृक्षं वनतो जायती भय ।
 क्षेत्वा वनञ्च वनपञ्च निम्बाना ह्येष निरक्षयो ॥११॥
 (वनं क्षिप्रं मा वृक्षं वनतो जायते भयम् ।
 क्षित्वा वनं च वनर्यं च निर्वाणा भवत निरक्षयः ॥११॥)
 १८४—याव हि वनयो न क्षिप्रं जति
 अनुमत्तोपि नरस्स नारिसु ।
 पटिवद्धमनो नु तावसो वञ्छो
 क्षीरपको'व मातरि ॥१२॥
 (यावदि वनयो न क्षिप्रतेऽणुमात्रोऽपि नरस्य नारीषु ।
 प्रतिबद्धमनाः नु तावत् स वत्स-क्षीरप इव मातरि ॥१२॥)

अनुवाद—वनको काटो, वृक्षको मत, वनसे भय उत्पन्न होता है, मिथुओ ! वन और झाड़ीको काटकर निर्वाणको प्राप्त हो जाओ । जबतक अणुमात्र भी स्त्रीमें पुरुषकी कामना अखण्डित रहती है, तबतक दूध पीनेवाला बछड़ा जैसे मातामें आवद्ध रहता है, (वैसे ही वह पुरुष बंधा रहता है) ।

शेतवन

सुवर्णकार (थेर)

२८५-उच्छिन्द सिनेहमत्तनो कुमुदं शारदिकं'व पाणिना
शान्तिमग्गमेव बूहय निब्बान सुगतेन देसितं ॥१३॥

(उच्छिन्धि स्नेहमात्मनः कुमुद शारदिकमिव पाणिना ।

शान्तिमार्गमेव बृंहय निर्वाणं सुगतेन देशितम् ॥१३॥)

अनुवाद—हाथसे शरद् (अतु) के कुमुदकी भाँति, आत्मस्नेहको उच्छिन्न कर डालो, सुगत (= बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट (इस) शान्तिमार्ग निर्वाणका आश्रय लो ।

शेतवन

(महाघनी वणिक)

२८६-इध वस्सं वसिस्सामि इध हेमन्तगिम्हसु ।

इति बालो विचिन्तेति अन्तरायं न बुज्झति ॥१४॥

(इह वर्षासु वसिष्यामि इह हेमन्तग्रीष्मयोः ।

इति बालो विचिन्तयति, अन्तरायं न बुध्यते ॥१४॥)

अनुवाद—यहाँ वर्षामें वसूँगा, तहाँ हेमन्त और ग्रीष्ममें (वसूँगा)
—मूढ़ इस प्रकार सोचता है, (और) अन्तराय (= विज) को नहीं बुझता ।

श्लोक

विष्ठा गोठमी (बेटी)

२८७- पुत्तपसुसम्मत्तं व्यासस्तमनसं नर ।

सुत्तं गार्मं महोघो'व मरुच्चू ध्यावाय गच्छति ॥१५॥

(तं पुत्र-पसु-सम्मत्तं व्यासस्तमनसं नरम् ।

सुत्तं गार्मं महोय इव मृत्युरावाय गच्छति ॥१५॥)

अनुवाद—सोने गार्ममे जैसे बड़ी बाढ़ (क्या बेगाने) जैसे ही पुत्र और पसुमें विष्ठा ध्यावत (विष्ठा) पुत्रको मीठ खे जाती है ।

श्लोक

पद्मचार (बेटी)

२८८- न सन्ति पुत्ता सास्याय न पिता मापि बन्धवा ।

अन्तकेनाधिपन्नस्स मत्वि आतिसु सासता ॥१६॥

(न सन्ति पुत्रास्त्राजाय न पिता माऽपि बान्धवा ।

अन्तकेनाऽधिपन्नस्य माऽस्ति आतिसु सासता ॥१६॥)

अनुवाद—पुत्र रक्षा नहीं कर सकते न पिता व कन्धुबोग ही । अन्तकेनाधिपन्नता है, तो आतिसुके रक्षक नहीं हो सकते ।

२८९- एतमर्षबलं अस्वा पण्डितो सीलसंबुतो ।

निर्वाणममनं मार्गं क्षिप्रमेव विसोधये ॥१७॥

(एतमर्षबलं ज्ञात्वा पण्डितः सीलसंबुतः ।

निर्वाणममनं मार्गं क्षिप्रमेव विसोधयेत् ॥१७॥)

अनुवाद—इस बातको जानकर पण्डित (वर) सीलबान्धु हो, निर्वाण की ओर बेगानेबाधे मार्ग को शीघ्र ही साध करे ।

२०—मार्गार्णव समाप्त

२१--पकिरणकवग्गो

राजगृह (वेशुवन)

गङ्गावरोहण

२६०-मत्तासुखपरिच्चागा पस्से चे विपुल सुखं ।
चजे मत्तासुखं धीरो सम्पस्सं विपुलं सुख ॥१॥

(मात्रासुखपरित्यागात् पश्येच्चेद् विपुलं सुखम् ।
त्यजेन्मात्रासुख धीर सपश्यन् विपुलं सुखम् ॥१॥)

अनुवाद-थोड़ेसे सुखके परित्यागसे यदि बुद्धिमान् विपुल सुख (का
लाभ) देखे, तो विपुल सुखका ख्याल करके थोड़ेसे सुखको
छोड़ दे ।

जेतवन

कोई पुरुष

२६१-परदुक्खूपदानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।
वेरसंसग्गससट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥२॥

(परदुःखोपादानेन य आत्मन सुखमिच्छति ।
वैरसंसर्गसंसृष्टो वैरात् से न प्रमुच्यते ॥२॥)

अनुवाद—दूसरेको दुःख देखने को अपने जिने सुख चाहता है, वेत्ने संसर्गमें पककर, वह बैरछे नहीं कृपता ।

महियकार (आतिवाचक)

मरिप (मित्र)

२१२—यं हि किञ्चन तदपविष्ट अकिञ्चनं पम कथिरति ।
उभलामं पमस्तान तेस मञ्जुमि आसवा ॥३॥

(यदि कृत्य तद् अपविष्टं अकृत्य पुन कुमु ।
उम्मत्तानां प्रमस्तानां तेषां मञ्जुमि आसवा ॥३॥)

२१३—येसञ्च सुसमारब्धा मिञ्चं कायगता सति ।
अकिञ्चन्ते न सेवन्ति किञ्चे सातञ्चकारिनो ।
सस्तानं सम्पमानानां अत्यं गञ्जुमि आसवा ॥४॥

(येपाञ्च सुसमारब्धा मिञ्चं कायगता स्मृति ।
अकृत्यं ते न सेवन्ते कृत्ये सातत्यकारिणः ।
स्मरतां *सम्प्रभामानां अस्तं गञ्जुमि आसवा ॥४॥)

अनुवाद—जो कर्तव्य है वचे (तो वह) जोवता है, जो अकर्तव्य है उसे करता है ऐसे वचे मन्त्रवाचे प्रमादियोंके आलय (= विलम्ब) बढ़ते हैं । किन्हीं कावामिं (अकर्मपूरता मञ्जिवता आदि दोष अम्मन्वी) स्मृति तथार रहती है, वह अकर्तव्य नहीं करते, और कर्तव्यके निरन्तर करवेवाचे होते हैं । वा स्मृति, और सगप्रबन्ध (= सञ्चेतपम) को रखवेवाचे होते हैं, वचके आलय अस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

लकुण्ठक भद्विय (थेर)

२९४—मातर पितर हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये ।

रद्ध सानुचर हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥५॥

(मातर पितर हत्त्वा राजानौ द्वौ च क्षत्रियौ ।

राष्ट्र सानुचर हत्त्वाऽनघो याति ब्राह्मण ॥५॥)

अनुवाद-- माता (= वृष्णा), पिता (= अहकार), दो क्षत्रिय राजाओं [= (१) आत्मा, ब्रह्म प्रकृति आदिकी नित्यता का सिद्धान्त, (२) मरणान्त जीवन मानना या जड़वाद], अनुचर (= राग) सहित राष्ट्र (= रूप, विज्ञान आदि ससार के उपादान पदार्थ , को मार कर ब्राह्मण (= ज्ञानी) निष्पाप होता है ।

२९५—मातर पितर हन्त्वा राजानो द्वे च सोत्तिये ।

वेद्यग्घपञ्चम हन्त्वा अनिघो याति ब्राह्मणो ॥६॥

(मातर पितर हत्त्वा राजानौ द्वौ च श्रोत्रियौ ।

व्याघ्रपचम हत्त्वा नघो याति ब्राह्मणः ॥६॥)

अनुवाद—माता, पिता, दो श्रोत्रिय राजाओं [= (१) नित्यतावाद, (२) जड़वाद] और पाँचवे व्याघ्र (= पाँच ज्ञान के आवरणों) को मारकर, ब्राह्मण निष्पाप हो जाता है ।

राजगृह (वेणुवन)

(दारुसाकटिकपुत्त)

२९६—सुप्पबुद्ध पबुञ्जन्ति सदा गोतमसावका ।

येस दिवा च रत्तो च निच्च बुद्धगता सति ॥७॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गीतमभाषका ।
येषां विद्या च रात्रौ च नित्यं बुद्धपता स्मृतिः ॥७॥)

२९७—सुप्पबुद्धं पबुञ्जन्ति सदा गीतमसावका ।
येसं विद्या च रत्तो च निज्ज्वं धम्मगता सति ॥ ८ ॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गीतमभाषका
येषां विद्या च रात्रौ च नित्यं धम्मगता स्मृतिः ॥८॥)

२९८—सुप्पबुद्धं पबुञ्जन्ति सदा गीतमसावका ।
येसं विद्या च रत्तो च निज्ज्वं सङ्खगता सति ॥९॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते सदा गीतमभाषका ।
येषां विद्या च रात्रौ च नित्यं संघगता स्मृतिः ॥९॥)

अनुवाद—जिनको दिन-रात बुद्ध-विषयक स्मृति बनी रहती है, वह गीतम (बुद्ध) के लिये एवं ध्यागस्क रहते हैं । जिनको दिन-रात धर्म-विषयक स्मृति बनी रहती है । जिनको दिन-रात संघ-विषयक स्मृति बनी रहती है ।

२९९—सुप्पबुद्धं पबुञ्जन्ति सदा गीतमसावका ।
येसं विद्या च रत्तो च निज्ज्वं कायगता सति ॥१०॥

(सुप्रबुद्धं प्रबुध्यन्ते • । • नित्यं कायगता स्मृतिः ॥१०॥)

३००—सुप्पबुद्धं पबुञ्जन्ति सदा गीतमसावका ।
येसं विद्या च रत्तो च अहिंसाय रत्तो मनो ॥११॥

(सुप्रबुद्धं • । • अहिंसायां रतं मनः ॥११॥)

३०१—सुप्पबुद्ध पवुज्झन्ति सदा गोतमसावका ।
 येसं दिवा च रत्तो च भावनाय रतो मनो ॥१२॥
 (सुप्रबुद्धं ० । ० भावनाया रत मन ॥१२॥)

अनुवाद—जिनको दिन-रात कायघिपयक त्मृति बनी रहती है० ।
 जिनका मन दिन-रात अहिंसा में रत रहता है ० । जिनका
 मन दिन-रात भावना (= चिंता) में रत रहता है० ।

वैशाली (महावन) वज्जिपुत्तक (भिक्षु)

३०२—दुप्पब्बज्ज दुरभिरम दुरावासा घरा दुखा ।
 दुक्खोऽसमानसवासो दुक्खानुपतितद्धगू ।
 तस्मा न च अद्धगू सिया न च दुक्खानुपतितो सिया ॥१३॥
 (दुष्प्रव्रज्या दुरभिराम दुरावासं गृहं दुःखम् ।
 दुःखोऽसमानसवासो दुःखाऽनुपतितोऽध्वगः ।
 तस्मान्न चाऽध्वग स्यान्न च दुःखाऽनुपतित स्यात् ॥१३॥)

अनुवाद—कष्टपूर्ण प्रव्रज्या (= सन्यास) में रत होना दुष्कर है, न
 रहने योग्य घर दुःखद है, अपमान के साथ बसना दुःखद
 है, मार्गका बटोही होना दुःखद है, ह्रस्वलिपु मार्ग का बटोही
 न बने, न दुःखमें पतित होवे ।

जेतवन

चित्त (गृहपति)

३०३—सद्धो सीलेन सम्पन्नो यसोभोगसमप्पितो ।
 य य पदेस भजति तत्थ तत्थेव पूजितो ॥ १४ ॥

(धृष्ट प्रीप्तिनेन सम्पन्नो यज्ञोभोगसमर्पित ।

य य प्रवेश भवते तत्र तत्रैव पूजित ॥१४॥)

अनुवाद—धृष्टावान्, लीखवाम यद्य और भोग से पुत्र (पुत्र्य) जिस जिस स्थानमें जाता है वहीं वहीं पूजित होता है ।

अतश्च

(शुभ्र) सुवरा

३०४—दूरे सन्तो पकासेन्ति हिमवन्तो 'व पर्वता ।

असन्तेत्य न विस्सन्ति रत्तिखित्ता यथा सरा ॥१५॥

(दूरे सन्त प्रकाशन्ते हिमवन्त इव पर्वता ।

असन्तोऽन न बुद्ध्यन्ते रत्तिखित्ता यथा सरा ॥१५॥)

अनुवाद—सन्त (ध्वज) दूर होने पर भी हिमालय पर्वत (की) चरम चोटियों की भाँति प्रकाशते हैं और असन्त वहीं (पाद में भी) होने पर रात में जेके वाक की भाँति वहीं दिखलाई देते ।

चेतश्च

अरञ्च विहरनेवाणे (घेर)

३०५—एकासमं एकसेम्य एकोच्चरमतन्वितो ।

एको वमयमसान वनन्तं रमितो सिया ॥१६॥

(एकासम एकदाय्य एकदधरमतन्वित ।

एको वमयघात्मान वनागते रत स्यात् ॥१६॥)

अनुवाद—एकही आसन रखनेवाला एक शय्या रखनेवाला, घेरनेवा विचरनेवाला (ध्वज) आश्रयदाहृत हो घबरेको वमय कर घबरेका ही वनागत में रमय कर ।

२१—प्रज्ञीसुवर्ग समाप्त

२२—निरयवग्गो

जेतवन

सुन्दरी (परिव्राजिका)

३०६—अभूतवादी निरय उपेति यो वापि
कत्त्वा 'न करोमी' ति चाह ।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति
निहीनकम्मा मनुजा परत्थ ॥ १ ॥

(अभूतवादी निरयमुपेति,
योवाऽपि कृत्वा 'न करोमी' ति चाह ।
उभावपि तौ प्रेत्य समा भवतो
निहीनकर्माणौ मनुजौ परत्र ॥१॥

अनुवाद—असत्यवादी नरकमें जाते हैं, और वह भी जो कि करके
'नहीं किया'—कहते हैं । दोनों ही प्रकार के नीचकर्म करने
वाले मनुष्य मरकर समान होते हैं ।

राजगृह (वेशुवन)

(पाप फलानुभवी प्राणी)

३०७—कासावकण्ठा बहवो पापधम्मा असञ्जता ।
पापा पापेहि कम्मेहि निरयन्ते उप्पज्जरे ॥२॥

(कावापकठा बहुषा पापधर्मा असयता ।

पापा पापं कर्मनिर्निरय त उत्पद्यसे ॥२॥)

अनुवाद—कंठमें कावाक (-बल्ब) बांधे किन्तु ही पापी असंयमी हैं जो
पापी कि (अपने) पाप कर्मोंसे बरकमें उत्पन्न होते हैं ।

बैशाखी

(कम्बुवातीरवाती मिषु)

३०८--सेम्यो अयोगुलो मुत्तो तत्तो अग्गिसिक्खुपमो ।

यञ्चे भुञ्जेम्य बुस्सीलो रट्ठपिण्ड असञ्जतो ॥३॥

(अपेयम् अयोगुलो भुक्तस्तप्तोऽग्निक्षिप्तोपम ।

यञ्चेद् भुञ्जीत बुस्सीलो राष्ट्रपिण्ड असंयत ॥३॥)

अनुवाद—असंयमी बुराचारी जो राष्ट्र का पिण्ड [= देवका अन्न]
कामे से अग्नि-किष्का के समान तप्त छोड़े का मोटा कावा
उत्पन्न है ।

शेखर

सेम (अष्टीपुत्र)

३१०--अत्वारि ठानानि नरो पमत्तो

आपञ्जतो परदारोपसेवी ।

अपुञ्जसाम न मिकामसेम्यं मिन्दं

ततीय निरय चतुत्थं ॥४॥

(अत्वारि स्वामानि नरः प्रमत्त आपद्यते परदारोपसेवी ।

अपुञ्जसाम न मिकामसेम्यां

मिन्दां तृतीया निरयं चतुत्थम् ॥४॥)

३१०--अपुञ्जसामो अ गती अ पापिका,

भोतस्त भीताय रती अ चोकिका ।

राजा च दण्डः गुरुकं पश्यति
तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥५॥

(अपुण्यलाभश्च गतिश्च पापिका,
भीतस्य भीतया रतिश्च स्तोकिका ।
राजा च दंडं गुरुकं प्रणयति
तस्मात् नरो परदारान् न सेवेत ॥५॥)

अनुवाद—प्रमादी परस्त्रीगामी मनुष्य की चार गतियाँ हैं—अपुण्य-
का लाभ, सुख से न निद्रा, तीसरे निन्दा, और चौथे नरक ।
(अथवा) अपुण्यलाभ, बुरी गति, भयभीत (पुरुष) की,
भयभीत (स्त्री) से अत्यल्प रति, और राजा का भारी दण्ड
देना, इसलिये मनुष्य को परस्त्रीगमन न करना चाहिये ।

नेतवन

(कटुभाषी मित्रु)

३११—कुशो यथा दुग्गहीतो हृत्थमेवानुकन्तति ।
सामञ्जं दुष्परामट्ठं निरयायुपकड्ढति ॥६॥

(कुशो यथा दुर्गहीतो हस्तमेवाऽनुकन्तति ।
श्रामण्य दुष्परामुष्टं निरयायोपकर्षति ॥६॥)

अनुवाद—जैसे ठीक से न षकड़ने से कुश हाथ को ही छेदता है, (इसो
प्रकार) श्रमणपन (=संन्यास) ठीक से ग्रहण न करने पर
नरक में बने जाता है ।

३१२—यं किञ्चि सिथिलं कम्मं सड्किलिट्ठं च य वतं ।
सड्कस्सरं ब्रह्मचरियं नत होति महप्फलं ॥७॥

(यत् किञ्चित् सिद्धिस्तु कर्म सन्निवृत्तं च यद् भवति ।
सहस्रं च तद् भवति महत्फलम् ॥७॥)

अनुवाद—जो कर्म कि सिद्धि है जो भव कि लोभ (= मन्त्र)-कृत
है और जो महत्फल है वह महाफल (= ब्राह्मण)
नहीं होता ।

३१३—कथिराद्येन बलुहमेतं पराकमे ।
सिद्धिस्तु हि परिब्रामको भूम्यो आकिरते रज ॥८॥

(कथिराद्येत् कथीतेतद् बलुहमेतत् पराकमेत ।
सिद्धिस्तु हि परिब्रामको भूम्यो आकिरते रज ॥८॥)

अनुवाद—यदि (यथा कर्म) करना है तो बड़े करे पक्षमें एव
पराक्रम के साथ काम जाये, हीना भाषा परिब्रामक (=
अज्ञानी) अधिक मन्त्र विभेता है ।

उत्तर

(कोई ईप्साही नहीं)

३१४—अकृतं बुकृतं सेव्यो पश्चात् तपति बुकृत ।
कतञ्च सुकृतं सेव्यो यं कस्वा मानुतप्यति ॥९॥

(महत् बुकृतं सेव्यं पश्चात् तपति बुकृतम् ।
कृतं च सुकृतं सेव्यो यत् कस्वा मानुतप्यते ॥९॥)

अनुवाद—बुकृत (= पाप) का न करना श्रेष्ठ है बुकृत करनेवाला
भीषण अनुताप करता है, सुकृत का करना श्रेष्ठ है जिसको
करने (अनुताप) अनुताप नहीं करता ।

जेतवन

बहुत से भिच्

३१५-नगर यथा पचन्त गुत्त सन्तरबाहिरं ।
 एव गोपेथ अत्तानं खणो वे मा उपचवगा ।
 खणातीता हि सोचन्ति निरयम्हि समप्पिता ॥१०॥

(नगर यथा प्रत्यन्त गुप्त सान्तर्बाह्यम् ।

एव गोपयेदात्मान क्षण वै मा उपातिगा ।

क्षणात्तीता हि शोचन्ति निरये समर्पिता. ॥१०॥)

अनुवाद—जैसे सीमान्तका नगर भीतर बाहर से खूब रक्षित होता है, इसी प्रकार अपने को रक्षित रखे, क्षण भर भी न छोड़े, क्षण चूक जाने पर नरक में पड़कर शोक करना पड़ता है ।

जेतवन

(जैन साधु)

३१६-अलज्जिता ये लज्जन्ति लज्जिता ये न लज्जरे ।
 मिच्छादिट्ठसमादाना सत्ता गच्छन्ति दुर्गतिं ॥११॥

(अलज्जिता ये लज्जन्ते लज्जिता ये न लज्जन्ते ।

मिथ्यादृष्टि समादाना सत्त्वागच्छन्ति दुर्गतिम् ॥११॥)

अनुवाद—अलज्जा (के काम) में जो लज्जा करते हैं और लज्जा (के काम] में जो लज्जा नहीं करते, वह झूठी धारणावाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

३१७-अभये च भयदस्सिनो भये च अभयदस्सिनो ।
 मिच्छादिट्ठसमादाना सत्तागच्छन्ति दुर्गतिं ॥१२॥

(अमये च भयवर्जितो भये चाऽभयवर्जितः ।

मिथ्यावृद्धिसमाधाना सत्त्वा गच्छन्ति दुर्गतिम् ॥१२॥

अनुवाद—अपरहित (काम) में जो भय देखते हैं और (अभय कि
काम) में भय को नहीं देखते वह मूर्खी चारबाबा बान्हे ॥

गेठबब

(वीर्यिक-विष)

३१८—अवज्ज्वल वज्जमतितो वज्जसे चावज्जवर्जितो ।

मिथ्यावृद्धिः ॥१२॥

(अवघे वज्जमतयो वघे चाऽवज्जवर्जितः ।

मिथ्यावृद्धिः ॥१३॥)

अनुवाद—जो अदोष में दोषवृद्धि रखनेवाला है (और) दोष में
अदोष छिद्र रखनेवाला वह मूर्खी चारबाबा बान्हे ।

३१९—अवज्ज्वल वज्जमतो अत्त्वा अवज्ज्वल वज्जमतो ।

सम्मावृद्धिसमाधाना सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥

(वर्ज्यं च वज्जतो आत्वाऽवघं चावघतः ।

सम्यग्वृद्धिसमाधाना सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥)

अनुवाद—दोष को दोष जानकर और अदोष को अदोष जानकर मूर्ख
चारबाबा बान्हे माथी सुगति को प्राप्त होते हैं ।

२२—निरयवर्ग समाप्त

२३ नागवग्गो

जेतवन

आमम् (थेर)

३२०—अहं नागो'द सङ्गामे चापतो पतितं सरं ।
अतिवाक्यं तित्तिक्खिस्सं दुस्सीलो हि बहुज्जनो ॥१॥

(अहं नाग इव संग्रामे चापत पतितं शरम् ।
अतिवाक्यं तित्तिक्खिष्ये, दुःशीला हि बहुजना. ॥१॥) .

अनुवाद—जैसे बुद्ध में हाथी धनुष से गिरे शरको (सहन करता है
वैसेही मैं कट्टवाक्यों को सहन करूँगा, (संसार में तो)
दुःशोच आदमी ही अधिक हैं ।

३२१—वन्त नयन्ति समितिं दन्तं राजाभिरुहति ।
वन्तो सेट्ठोमनुस्सेसु यो'तिवाक्यं तित्तिक्खति ॥२॥

(वाप्तं नयन्ति समितिं वान्त राजाऽभिरोहति ।
वाप्त. श्रेष्ठो मनुष्येषु योऽतिवाक्य तित्तिक्खते ॥२॥)

(अमये च भवदक्षिणो भये चाभयवर्जितम् ।

मिथ्यादृष्टिसमाधाना सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१२॥

अनुवाद—अपरहित (काम) में भी भय देखते हैं धीर [भय (कि
काम) में भय को नहीं देखते यह सूत्री धारणा पाठे • ॥

शेतेष्व

(तीर्थिक-शिव)

३१८—अवञ्च वञ्चमतिमो वञ्चे चावञ्चदस्तिमो ।

मिथ्यादृष्टिः ॥१२॥

(अवञ्चे वञ्चमतिमो वञ्चे चावञ्चदस्तिम् ।

मिथ्यादृष्टिः ॥१३॥)

अनुवाद—जो अवञ्च में दोषबुद्धि रखनेवाले है (धीर) दोष में
अवञ्च यह रखनेवाले यह सूत्री धारणापाठे ।

३१९—वञ्चमञ्च वञ्चतो अत्वा अवञ्चञ्च वञ्चञ्चतो ।

सम्मादृष्टिसमाधाना सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥

(वञ्चं च वञ्चतो मात्वाञ्चं चावञ्चत ।

सम्यग्दृष्टिसमाधाना सत्त्वा गच्छन्ति सुगतिम् ॥१४॥)

अनुवाद—दोष को दोष जानकर धीर अवञ्च को अवञ्च जानकर ही
धारणापाठे मात्वा सुगति को प्राप्त होते हैं ।

२२—निरयवर्ग समाप्त

अनुवाद—शाम्भ [= सिञ्चित] (हाथी) को पुत्र में ले जाते हैं तो, शाम्भ पर राजा चढ़ता है मनुष्यों में भी शाम्भ (= सख्य शौच) श्रेष्ठ है, जो कि कटुवाक्यों को प्रहसन करता है ।

३२२—धर अस्ततरा वन्ता आजानीया च सिन्धवा ।
कुञ्जरा च महानागा अरावन्तो ततो धर ॥३॥

(धरमश्वतरा शान्ता आजानीयाश्च सिन्धवा ।

कुञ्जराश्च महानागा आरामशान्तस्ततो धरम ॥३॥)

अनुवाद—धर, उचम खेठके सिन्धी घोड़े धर महाबाम हाथी शाम्भ = (सिञ्चित) होने पर श्रेष्ठ हैं और अपने का इमन किया (पुत्र) धरसे भी श्रेष्ठ है ।

अेतथम

भूतपूर्वं महावत् सिन्धु

३२३—नहि एतेहि यानेहि गच्छेय्य धगत विस ।
यथाऽसामा सुवस्तेन वन्तो वन्तेन गच्छति ॥४॥

(नहि एतेर्याने गच्छेय्यता विसाम् ।

यथाऽस्मिना सुवास्तेन वान्तो वान्तम गच्छति ॥४॥)

अनुवाद—इव (हाथी घोड़े आदि) बाधों से बिना गई विसा वाक (निर्वाह की धोर नहीं जाया जा सकता संकमी पुत्र अपने की सख्य कर संवत् (इन्द्रियों) के साथ (वही) बहुच सकता है ।

अेतथम

(वृत्तिमिच्छ मास्यपुत्र)

३२४—धनपासको नामकुञ्जरोकटकल्पभेवनोबुद्धिवारयो
बद्धो कयल न भुञ्जति सुमरति नागवमस्त कुञ्जरो ॥५॥

(धनपालको नाम कुजरो कटकप्रभेदतो दुर्निवार्यः ।

बद्ध. कवल न भुवते, स्मरति नागवन कुजर. ॥५॥)

अनुवाद—सेनाको तितर वितर करने वाला, दुर्धर्म धनापलक नामक
हार्थी, (आज) बन्धनमें पड़ जाने पर कवल नहीं खाता,
और (अपने) हाथियोंके जगलको स्मरण करता है ।

जेतवन

पसेनदी (कोसलराज)

३२५—मिद्धो यदा होति महग्घसो च

निद्रायिता सपरिवत्तसायी ।

महावराहो' व निवापपुट्ठो

पुनप्पुन गब्भमुपेति मन्दो ॥६॥

(मृद्धो यदा भवति महाघसश्च निद्रायित सपरिवर्तशायी ॥

महावराह इव निवाप-पुष्ट पुन पुन गर्भमुपेति मन्दः ॥६॥

अनुवाद—जो (पुरुष) गालसी, बहुत खाने वाला, निद्रालु, करचट
बदल बदल सोने वाला, तथा दाना देकर पले मोटे सुअर
की भाँति, होता है, वह मन्द बार बार गर्भमें पड़ता है ।

जेतवन

(सामथेर)

३२६—इद पुरे चित्तमचारि चारिक

येनिच्छक यत्थ कामं यथासुख ।

तदज्ज' ह निग्गहेस्सामि योनिसो

हत्थिप्पाभिन्नं विय अङ्कसग्गहो ॥७॥

(इद पुरा- चित्तमचरत् चारिकां

यथेच्छ यथाकाम यथासुखम् ।

तदद्याऽह निग्रहीष्यामि योनिशो

हस्तिन प्रभिन्नमिवाकुशग्राह ॥७॥)

अनुवाद—बह (मेरा) बिच पहिले बघेण् = बघाकर्म, जैसे कुछ मासूम हुआ जैसे बिचलेबाबा वा; जो बाब म्हास्त जैसे म्हाबाबे हाथीको (बकता है, जैसे) मैं उसे बघते पकड़ूँगा ।

वेत्तव्य

अपेक्षाराम्य वाकेकक नामक हाथी

३२७—अप्रमादरता होय स चित्तमनुरसत ।

दुगा उदरयत्तानं पञ्चे सत्तो'व कृष्णरो ॥८॥

(अप्रमादरता भवत स्वचित्तमनुरसत ।

दुर्गादुदरताऽऽत्मानं पके सस्त इव कृष्णरः ॥८॥)

अनुवाद—अप्रमाद (आववाकता) में एत हाथी अपने मक्की रस करो पकमें जैसे हाथीकी तरह (राग आदिमें जैसे) जल को ऊपर निकालो ।

पारिषेकक

बहुतसे मित्र

३२८—सधे समेध निपकं सहायं

सखि धरं साधुबिहारिधोरं ।

अभिभूय सब्धामि परिस्सयानि

धरेम्य तेन'त्तमनो सतीमा ॥९॥

(स धेत् समेध निपक सहाय

साख्यं धरन्तं साधुबिहारिधोरम् ।

अभिभूय सर्धान् परिस्सयान्

धरेत् तेनऽऽत्तमना स्मृतिमान् ॥९॥)

अनुवाद—यदि परिपक्व (—बुद्धि) बुद्धिमान् साथमें विहरनेवाला
(=शिष्य) सहचर मित्र मिले, तो सभी परिश्रयों
(=विघ्नों) को हटाकर सचेत प्रसन्नचित्त हो उसके साथ
विहार करे ।

३२६-नो चे लभेथ निपक्व सहाय

सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं ।

राजा 'व रट्ठ विजितं पहाय

एको चरे मातङ्ग 'रञ्जेव नागो ॥१०॥

(न चेत् लभेत निपक्व सहायं

सद्धं चरन्तं साधुविहारिण धीरम् ।

राजेव रट्ठ विजित प्रहाय,

एकश्चेत् मातगोऽरण्य इव नाग ॥१०॥

अनुवाद—यदि परिपक्व, बुद्धिमान् साथमें विहरनेवाला सहचर मित्र
न मिले, तो राजा की भाँति पराजित राष्ट्र को छोड़
गजराज हाथी की तरह अकेला विचरे ।

३३०-एकस्स चरितं श्रेयो नत्थि बाले सहायिता ।

एको चरे न च पापानि कयिरा

अप्पोस्सुक्को मातङ्ग 'रञ्जे'व नागो ॥११॥

(एकस्य चरितं श्रेयो नास्ति बाले सहायिता ।

एकश्चरेत् न च पापानि कुर्याद्

अल्पोत्सुको मातगोऽरण्य इव नागः ॥११॥)

अनुवाद—अकेला विचरना उचम है किन्तु मूढकी मित्रता अर्पणी नहीं, मातृगणक हाथी की भाँति अनासक्त हो अकेला विचरे और पाप न करे।

हिमवत्-धरोत

मातृ

३३१—अल्पमिह जातमिह सुखा सहाया
 सुदुःखी सुखा या इतरीतरेण ।
 पुञ्ज सुख भीषतसंक्षयमिह
 सम्बस्त बुद्धस्त सुख पहाण ॥१२॥

(अर्थे जाते सुखा सहाया, सुदुःखी सुखायेतरेतरेण ।
 पुण्य सुखं भीषितसंक्षयमे
 सर्वस्य बुद्धस्तस्य सुखं प्रहाणम् ॥१२॥)

अनुवाद—अम पक्षे पर मित्र मुण्ड (बगले हैं) परस्पर अन्वेष हो (पह भी) मुण्ड (पत्त) है जीवन के क्व होने पर (किंवा हुआ) पुण्य मुण्ड (होता है) सारे दुःखोंका विनाश (= धर्तव् हाका) (पह सबस अधिष्ठ) मुण्ड है।

३३२—सुखा मत्सेव्यता लोके अथो वेत्सेव्यता सुखा ।
 सुखा सामञ्जसता लोके अथो ब्रह्मञ्जसता सुखा ॥१३॥

(सुखा माप्रीयता लोकेऽप विप्रीयता सुखा ।
 सुखा अमपता लोकेऽप ब्राह्मपता सुखा ॥१३॥)

अनुवाद—लोक में माता की सेवा सुखकर है, और पिता की सेवा (भी) सुखकर है, श्रमणभाव (= संन्यास) लोकमें सुखकर है, और ब्राह्मणपन (= निष्पाप होना) सुखकर है ।

२३३—सुखं याव जरा शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता ।

सुखो प्रजाय पटिलाभो पापानं अकरणं सुखं ॥१४॥

(सुखं यावद् जरां शीलं सुखा श्रद्धा प्रतिष्ठिता ।

सुख प्रजाया प्रतिलाभ. पापानां अकरणं सुखम् ॥१४॥)-

अनुवाद—बुढ़ापे तक आचार का पालन करना सुखकर है, और स्थिर श्रद्धा (सत्य में विरवास) सुखकर है, प्रज्ञाका लाभ सुख कर है, और पापों का न करना सुखकर है ।

२३--नागवर्ग सभाप्त

२४ तण्डुवावगो

वेदकव

अपिबन्ध

वे ३४—मनुजस्य प्रमत्तचारिनोत्पन्ना वृद्धतिमाप्नुवा विम ।
सो पलवती हुराहुरं फलमिच्छ 'व वनस्मिं वानरो ॥१॥

(मनुजस्य प्रमत्तचारिणः तुष्णा वर्द्धते मात्तुषेव ।
स फलवतेऽहुरहः फलमिच्छन् इव वने वानरः ॥१॥)

अनुवाद—ममच होकर जाचरख करेबाखे मनुज की तुष्णा मात्तु-
(कटा) की भाँति बढ़ती है, वनमें वानर की भाँति
फल की इच्छा करते दिवोंदित वह फलवता रहता है ।

वे ३५—य एसा साह्यसि जन्मिमी तुष्णा लोके विद्यात्मिका ।
सोका तस्तस्य प्रवर्द्धन्ति अभिवर्द्ध व वीरर्यम् ॥२॥

(यं एसा साह्यसि जन्मिमी तुष्णा लोके विद्यात्मिका ।
सोकास्तस्य प्रवर्द्धन्तेऽभिवर्द्धमानं इव वीरर्यम् ॥२॥)

अनुवाद—वह (वानर) वनमें रहेबाखी दिवकरी तुष्णा
जिपको फलवती है, वर्द्धयशील वीरर्य (= बड़ाई वधावेक
एक तुष्ण) की भाँति वनके लोक बढ़ते हैं ।

३३६-यो चेत्तं सहती जम्मि तण्हं लोके दुरच्चय ।

सोका तम्हा पपतन्ति उदविन्दू 'व पोक्खरा ॥२॥

(यश्चेत्ता साहयति जन्मिनी तूष्णा लोके दुरत्ययाम् ।

शोका तस्मात् प्रपतन्त्युदविन्दुरिव पुष्करात् ॥३॥)

अनुवाद—इस वरायर जनमते रहनेवाली, दुस्त्याज्य तृष्णा को जो लोक में परास्त करता है, उससे शोरु (बैरोही) गिर जाते हैं, जैसे कमल (-पत्र) जल का बिन्दु ।

३३७-त वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता ।

तण्हाय मूलं खण्णथ उसीरत्थो 'व वीरण ॥४॥

(तद् वो वदामि भद्रं वो यावन्त इह समागता ।

तूष्णाया मूलं खनतोशीरार्थीव वीरणम् ॥४॥

अनुवाद—इसलिये तुम्हें कहता हूँ, जितने यहाँ आये हो, तुम्हारा सबका मंगल हो, जैसे खसके लिये लोग उपरको खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णाकी जड़को खोदो ।

अेतवन

गृथ सूकर-योतिक

३३८-यथापि मूले अनुपद्दवे दल्हे

छिन्नेपि रुक्खो पुनरेव रूहति ।

एवम्पि तण्हानुसये अनूहते

निब्वत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं ॥५॥

(यथाऽपि मूलेऽनुपद्रवे वृद्धेऽपि वृक्षः पुनरेव रोहति ।

एवमपि तूष्णाऽनशोऽनिहते निर्वर्तते दुःखमिदं पुनः पुनः ॥५॥)

अमुबाद—जैसे बड़े हथ और न कटी होने पर कम बुधा भी नृ
 फिर उग आता है इसी प्रकार तुम्हाकमी बुद्ध
 (=मह) के न मरने पर यह बुद्ध फिर फिर पैदा
 होता।

३३६—पस्स छत्तिसती सोता ममापस्सवना भूसा ।

वाहा वहन्ति बुद्धिद्धिंठं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥६॥

(पस्य पवत्रिंशत् श्रोतांसि ममापन्नवचामि भूयासु ।

वाहा वहन्ति बुद्धिं संकप्पा रागनिस्तुता ॥६॥)

अमुबाद—जिसके, बड़ीस जोत * मर को अच्छी जगनेवाली (सीमें)
 को ही चायेवाले हों (उसने विष) रागविष संकल्प की
 बाह्य तर आशाओं को बंधन करते हैं ।

३४०—सवन्ति सङ्गधि सोता सता उग्गिभञ्ज तिट्ठति ।

तच्छ वस्सा सत जात मूलं पञ्जाय छिन्धथ ॥७॥

(सवन्ति सवत श्रोतांसि सता उग्गिथ तिट्ठति ।

ताथबुद्ध्या सता जाता मूलं प्रजया छिन्धथ ॥७॥)

अमुबाद—(यह) जोत चारों ओर बहते हैं (जिसके कारण)
 (तुम्हा कमी) जता संकुरित प्यती है, उत

* धीय, काय नाक, बीम काया (= धर्म) मर रूप संव कम्प,
 रस, स्वस, धर्म (= मरक विषय) धीयका विद्याम (= धीयके होने
 वाळा ज्ञान) धीर काय, नाक, बीम काया तथा मरक विद्याम, धीर
 धीयती धीर वादती भेद से बड़ीस जोत होते

उत्पन्न हुई लता को जानकर, प्रजा से (उसकी) जड़को काटो !

३४१-सरितानि सिनेहितानि च
सौमनस्सानि भवन्ति जन्तुतो
ते वे स्रोतसिता सुखेसिनो
ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥८॥

(सरित स्निग्धाश्च सौमनस्या भवन्ति जन्तोः ।
ते स्रोतसृता सुखेधिगस्ते वै जातिजरोपगा नरा. ॥८॥)

अनुवाद—(यह) (तृष्णा रूपी) नदियाँ स्निग्ध ग्रीर प्राणियों के चित्तको खुश रखनेवाली होती हैं, (जिनके) नर स्रोत में बधे, सुख की खोज करते, जन्म और जरा के फेर में पड़ते हैं ।

३४२-तसिणाय पुरवखता पजा
परिसीप्पन्ति ससो 'व बाधितो ।
सञ्जोजनसङ्ग सत्तका
दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुन चिराय ॥९॥

(तृष्णया पुरस्कृताः प्रजा रिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।
सयोजनसगसक्तका दु खमुपयन्ति पुन पुन. चिराय । ९॥)

अनुवाद—तृष्णाके पीछे पड़े प्राणी, बधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, सयोजनों (=मनके बधनों) में फँसे (जन पुन पुन चिरकाल तक दु ख को पाते हैं) ।

अनुवाद—जैसे बन्दे छद् और न फटी होने पर फय हुआ भी नृ
 फिर उय जाता है इसी प्रकार कृष्णास्मी अनुभव
 (=मख) के पक्ष होनेपर यह गुण फिर फिर नै
 होता।

३३६-यस्त ध्याति सती सोता मनापस्सवना भुसा ।

धाहा वहन्ति बुद्धिर्दुर्ध सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥६॥

(यस्य पदत्रिंशत् सोतांसि मनापभवज्जानि भूयासु ।

धाहा वहन्ति बुद्धिं सङ्कप्पा रागनिस्सिता ॥६॥)

अनुवाद—त्रिंशद्, इतीस ओठ ३ मन को अपनी जगनेवाली (चीरो)
 को ही जाने-बाणे हों (यस्य धियं) रागनिष्ठ संज्ञक की
 बाह्य छर गरबाओं को बहन करते हैं।

३४०-सवन्ति सवधमि सोता सता उग्भिन्व तिष्ठति ।

सङ्क वस्वा सत ज्जातं मूल पठञ्जाय धिन्वत्त ॥७॥

(सवन्ति सवत् सोतांसि सता उग्भिन्व तिष्ठति ।

सङ्कदुप्पा सतां जाता मूलं प्रज्ञया धिन्वत्त ॥७॥)

अनुवाद—(सङ्क) ओठ चारों ओर बहते हैं (धिन्वत्ते धारक)
 (कृष्णा स्मी) जता संकुरित रहती है।

३ ज्ञाति काय, वाक्, बीय काया (= धर्म) मय, कम मय कम्प
 रस, स्वर्ग, धर्म (= मन्त्र विषय) ध्याति विज्ञाप (= ध्याते होने
 बाधा ज्ञान), धीर काय धाम्, धीय, काया उना मन्त्रे विज्ञाप, धी
 धीररी धीर बाहरी मेह से ध्याति ओठ होते हैं।

उत्पन्न हुई लता को जानकर, प्रज्ञा से (उसकी) जड़को काटो ।

३४१-सरितानि सिनेहितानि च
सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुतो

ते वे स्रोतसिता सुखेसिनो

ते वे जाति-जरूपगा नरा ॥८॥

(सरित स्निग्धाश्च सोमनस्या भवन्ति जन्तोः ।

ते स्रोतसृता सुखेषिणस्ते वै जातिजरोपगा नराः ॥८॥)

अनुवाद—(यह) (तृष्णा रूपी) नदियाँ स्निग्ध और प्राणियों के चित्तको मृश रखनेवाली होती है, (जिनके) नर स्रोत में बधे, सुख की खोज करते, जन्म और जरा के फेर में पड़ते हैं ।

३४२-तसिणाय पुरक्खता प्रजा
परिसीप्पन्ति ससो 'व बाधितो ।

सञ्जोजनसङ्ग सत्तका

दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुन चिराय ॥९॥

(तृष्णया पुरस्कृता प्रजा रिसर्पन्ति शश इव बद्धः ।

सयोजनसगसक्तका दु खमुपयन्ति पुन. पुन. चिराय । ९॥)

अनुवाद—तृष्णाके पीछे पड़े प्राणी, बधे खरगोश की भाँति चक्कर काटते हैं, सयोजनों (=मनके बधनों) में फँसे (जन पुन पुन चिरकाल तक दुःख को पाते हैं) ।

३४३-तसिरणाय पुरस्कृतः प्रजा
परिसर्पन्ति ससोषं व्याधिताः ।
तस्मात्ससिनं विनोदये भिक्षु
अकल्पी विरागमात्मनो ॥१०॥

तुष्यया पुरस्कृताः प्रजाः
परिसर्पन्ति सदा इव बद्धाः ।
तस्मात् तुष्यां विनोदयेत्
भिक्षुराकांक्षी विरागमात्मनः ॥१०॥

अनुवाद—तुष्या के पीछे पड़े प्राणी बंधे खरपोख की भाँति चलकर
मरते हैं; इसविषय भिक्षु को चाहिए कि वह अपने वैराग्यको
इत्यादि सब तूष्या को दूर करे ।

वेद्यपत्र

विद्यन्तक (भिक्षु)

३४४-यो निर्व्यमयो बन्धायमुक्तो
बन्धमुक्तो बन्धमेव धावति ।
तं पुनर्मलमेव पश्यन् मुक्तो बन्धममेव धावति ॥११॥
(यो निर्वाणार्थी बन्धाऽभिमुक्तो
बन्धमुक्तो बन्धमेव धावति ।
तुं पुनर्मुक्तमेव पश्यन् मुक्तो
बन्धममेव धावति ॥११॥)

अनुवाद—जो निर्वाणार्थी इत्यादि सब (पुरुष) सब (तूष्या) से
मुक्त हो, वह ये तूष्या ही फिर सब (= तूष्या) ही
की ओर दौड़ता है, उधर व्यक्ति को (बैठे ही) बन्धो

जैसे कोई (बन्धन) से मुक्त (पुत्र) फिर बन्धन ही की ओर दौड़े ।

जेतवन

बन्धनागार

३४५-न त दल्ह बन्धनमाहु धीरा

यदायसं दारुज बव्वजञ्च ।

सारत्तरत्तामणि कुण्डलेसु

पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥१२॥

(न तद् दृढ बन्धनमाहुर्धारा

यद् आयस दारुज पर्वज च ।

सारवद्-रक्ता मणिकुडलेषु

पुत्रेषु दारेषु च याऽपेक्षा ॥१२॥)

अनुवाद—(यह) जो लोहे लकड़ी या रस्सीका बन्धन है, उसे बुद्धिमान जन) दृढ़ बन्धन नहीं कहते, (वस्तुतः ढ़ बन्धन है जो यह) धन (= सारवत्) में रक्त होना, या मणि, कुण्डल, पुत्र स्त्रीमें इच्छाका होना है ।

४६-एत दल्हं बन्धनमाहु धीरा

ओहारिन शिथिलं दुप्पमुञ्च ।

एतम्पि छेत्त्वान परिब्वजन्ति

अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥१३॥

(एतद् दृढ बन्धनमाहुर्धारा

अपहारि शिथिल दुःप्रमोचम् ।

एतवपि छित्त्वा परिव्रजन्त्य-

नपेक्षिण. कामसुखं प्रहाय ॥१३॥)

अनुवाद—संग्रहेके शान्त करनेमें जो रत है सज्जत रह (जो)
अनुम (बुनियाके अन्दरे पहुँच) की भी सदा धारणा
करता है । वह मारके पञ्चबको विम्व करेगा, विबाध
करेगा ।

अंतकम

मार

५१—निटठङ्गतो असस्तासी वीततच्छो अतङ्गणो ।
उच्छिञ्चभयसस्मानिअस्तिमो'यं समुत्सयो ॥१८८॥
(निट्ठागतोऽसंभ्रासी वीततुष्णोऽनगण' ।
उत्सुञ्च भयसस्मानि अस्तिमोऽयं समुत्सय' ॥१८८॥)

अनुवाद—जिसके (पाप-शुद्ध) समाप्त हो गये, जो आस-क्यादक
नहीं है, जो मृषारहित और मरारहित है, वह मरके शरणों
को छोड़ेगा, वह उच्छन्न अंतिम देह है ।

३५२—वीततच्छो अनावानो निवसिपदकोविदो ।
अक्षरान सन्निपातं अञ्जा पुञ्जापरामि च ।
स वे अस्तिमसारीरो महापञ्जो'ति कुञ्चति । १९॥
(वीततुष्णोऽनावानो निवसिपदकोविदो ।
अक्षरानां सन्निपातं जानाति पुञ्जापरानि च
स वे अस्तिमसारीरो महाप्राज्ञ इत्युच्यते ॥१९॥)

अनुवाद—जो मृषारहित परिमरहित भाषा और अल्पअल्प ज्ञान
कार है और (जो) अक्षरोंके पहिले बीजे रखनेको जानता
है वह विरचय ही अस्तिम शरीर बाधा तथा महाप्राज्ञ
करा जाता है

गाय से वाराणसीके रा.वेमें

उपक (आजीवक)

३५३--सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि

सब्बेसु धम्मेषु अनूपलित्तो

सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो

सय अभिञ्जाय कमुद्दिसेट्ठयं ॥२०॥

(सर्वाभिभू सर्वविदहमस्मि सर्वेषु धर्मेष्वनुपलिप्त ।

सर्वजह. तूष्णाक्षये विमुक्त.

स्वयमभिजाय कमुद्दिशेयम् ॥२०॥)

अनुवाद—मैं (राग आदि) सभीका परास्त करनेवाला हूँ, (दु खसे मुक्ति पानेकी) सभी (बातों) का जानकार हूँ, सभी धर्मों (= पदार्थों) में अलिप्त हूँ, सर्वव्यापी, तूष्णाके नाशसे मुक्त हूँ, (विमल ज्ञानको) अपने ही जानकर (मैं अब) किसको अपना (गुरु) बतलाऊँ ?

जेतवन

सक्क देवराज

३५४-सब्बदानं धम्मदानं जिनाति

सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति ।

सब्बं रतिं धम्मरती जिनाति

तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति ॥२१॥

(सर्वदानं धर्मदानं जयति

सर्वं रसं धर्मरसो जयति ।

सर्वा रतिं धर्मरतिर्जयति

तूष्णाक्षय. सर्वदु.खं जयति ॥२१॥)

अनुवाद—धर्म का धाम सारे धर्मों से बड़ा है, धर्मरस सारे स्त्रोत्रों से प्रबल है, धर्म में रति सब रतियों से बड़ा है, तुम्हा का बिनाश सारे दुःखों को भीत होता है।

बौद्धवचन

(अष्टप्रक श्लोकी)

३५५—हृनन्ति भोगा बुद्धमेध गो चे पारगवेत्तिनो ।

भोगतण्हाय बुद्धमेधो हृस्तिअम्भो'व अत्तनं ॥२२॥

(धनान्ति भोगा बुद्धमेधसं न चेत् पारमवेत्तिनः ।

भोगतुल्यया बुद्धमेधा हृत्स्यस्य इवात्मनः ॥२२॥)

अनुवाद—(संसार को) पार होने की कोशिश न करनेवाले बुद्धि (पुण्य) को भोग बध करते हैं भोगों की तुल्य में पकड़ (बंध) बुद्धि पराये की भाँति अपने ही को बध करता है।

पाण्डुकरावर्तिका (देव्याः)

अष्टप्रक

३५६—तिरावोसानि क्षेत्रानि रागवोसा अय पजा ।

तस्मा हि वीतरागेषु बिन्नं होत्ति महप्फलं ॥२३॥

(तृणशोषाणि क्षेत्राणि रागबोपेय प्रजा ।

तस्माद्दि वीतरागेषु वत्त भवति महाप्फलम् ॥२३॥)

अनुवाद—प्रेता का शोष तुल्य है इस प्रजा (= मनुष्यों) का शोष राग है इच्छादि (बंध) वीतराग (पुण्य) को देने में महाफलमद होता है।

३५७—तिरावोसानि खेत्तानि वोसवोसा अय पजा ॥

तस्मा हि वीतवोसेसु बिन्नं होत्ति महप्फलं ॥२४॥

(तृणशोषाणि, क्षेत्राणि वपबोपेय, प्रजा ।

तस्माद्दि वीतवोसु वत्त भवति महाप्फलम् ॥२४॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिये
वीतद्वेष (= द्वेषरहित) को देने में महाफल होता है ।

३५८-तिणदोसानि खेत्तनि मोहदोसा अय पजा ।

तस्मा हि वीतमोहेषु दत्तं होति महफ्लं ॥२५॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि मोहदोषेय प्रजा ।

तस्माद्धि वीतमोहेषु दत्त भवति महाफलम् ॥२५॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष मोह है इसलिये
वीतमोह (= मोहरहित) को देने में महाफल होता है ।

३५९-तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसो अय पजा ।

तस्मा हि विगतिच्छेषु दिन्नं होति महफ्लं ॥२६॥

(तृणदोषाणि क्षेत्राणि, इच्छादोषेय प्रजा ।

तस्माद्धि विगतेच्छेषु दत्त भवति महाफलम् ॥२६॥)

अनुवाद—खेतों का दोष तृण है, इस प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिये
विगतेच्छ (= इच्छारहित) को देने में महाफल होता है ।

२५—भिक्षुवृत्तगो

श्लोक

शिक्षु

३६०—वक्षुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो ।
घारोम संवरो साधु साधु विद्वाय संवरो ॥१॥

(वक्षुया संवरः साधुः, साधुः शोत्रेण संवरः ।
घ्राप्तेन संवरः साधुः, साधुः विद्वया संवरः ॥१॥)

पनुवाद्य—शिक्षुना संवरः (= संनमः शीकः है, शीकः है कथं कथं संवरः
घ्रापः (= वाकः) संवरः शीकः है, शीकः है शीकः कथं संवरः ।

३६१—कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो ।
मनसा संवरो साधु साधु सव्यत्य संवरो ।
सव्यत्य संवृतो भिक्षुः सव्यदुष्कात् प्रमुच्यते ॥२॥

(कायेन संवरः साधुः, साधुः वाचा संवरः ।
मनसा संवरः साधुः, साधुः सर्वत्र संवरः ।
सर्वत्र संवृतो भिक्षुः सर्वदुष्कात् प्रमुच्यते ॥२॥)

अनुवाद—कायाका संवर (= संयम) ठीक है, ठीक है वचन का संवर;
मनका संवर ठीक है, ठीक है सर्वत्र (इन्द्रियों) का संवर,
सर्वत्र सर-युक्त भिक्षु सारे दु खों से छूट जाता है ।

जेतवन

हसघातक (भिक्षु)

३६२-हृत्थसञ्जतो पादसञ्जतो

वाचाय सञ्जतो सञ्जनुत्तमो ।

अञ्भत्तरतो समाहितो एको

सन्तुसितो तन्नाहु भिक्षू ॥ ३ ॥

(हस्तसयत पादसयतो वाचा संयत सयतोत्तमः ।

अध्यात्मरत. समाहित एक. सन्तुष्टस्तमाहुर्भिक्षुम् ॥३॥)

अनुवाद—किसके हाथ, पैर और वचन में संयम है (जो) उत्तम
संयमी है, जो घटके भीतर (= अध्यात्म) रत, समाधियुक्त,
अकेला (और) सन्तुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं ।

जेतवन

कोकालिय

३६३-यो मुखसञ्जतो भिक्षू मन् भाणी अनुद्धतो ।

अर्थं धम्मञ्च दीपेति मधुरं तस्स भासितं ॥ ४ ॥

(यो मुखसयतो भिक्षुर्भत्रभाणी अनुद्धतः ।

अर्थं धर्मं च दीपयति मधुरं तस्य भाषितम् ॥४॥)

अनुवाद—जो मुख में संयम रखता है, मनन करके बोलता है, उद्धत
नहीं है, अर्थ और धर्म को प्रकट करता है, उसका भाषण
मधुर होता है ।

बेदवच

धम्माराम (बेर)

३६४—धम्मारामो धम्मरतो धम्म अनुविचिन्तय ।

धम्मं अनुस्सर भिक्षु सद्धम्मा न परिहायति ॥५॥

(धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयन् ।

धम्ममनुस्सरन् भिक्षु सद्धम्मम् परिहीयते ॥५॥)

अनुवाद धम्म में रमण्य करनेवाला धम्म में रत धर्म का चिन्तन करते

धर्म का अपुरस्कार करते भिक्षु, अपने धर्म से च्युत नहीं होता

राजगृह (बेरुवन)

विपस्स-सेवक (विस्स)

३६५—सत्ताभ नात्तिमञ्जयेय, नाञ्जयेस पिहयं धरे ।

अञ्जयेस पिहयं भिक्षु समाधि नाधिगच्छति ॥ ६ ॥

(स्वस्मार्थनाश्रितमन्यत नाञ्जयेयां स्पृहयन् धरेत् ।

अभ्येषां स्पृहयन् भिक्षु समाधि नाधिगच्छति ॥६॥)

अनुवाद अपने कामकी अप्येक्षणा नहीं करनी चाहिये । दूसरों के

(काम) की लूहा न करनी चाहिये । दूसरों के (कामकी)

लूहा करने वाला भिक्षु समाधि (- चित्तकी पद्मप्रता)

को नहीं प्राप्त करता ।

३६६—अप्पसाभोपि ये भिक्षु स त्थमं नात्तिमञ्जयति ।

त ये वेवा पसंसन्ति सुखाञ्जीवि अतन्वितं ॥ ७ ॥

(अस्यसामोऽपि ये भिक्षु स्वस्मार्थं नाश्रितमन्यते ।

तं वै वेवा प्रसंसन्ति सुखाञ्जीवि अतन्वितम् ॥७॥)

अनुवाद—चाहे कल्प ही हो, भिक्षु अपने काम की अप्येक्षणा न करे ।

दूसरी की देखता मर्त्सता करते हैं, (जो) छन्द की निश्चयवाला

और आकल्प रहित है ।

जेतवन

(पाँच अग्रदायक भिक्षु)

३६७—सब्रतो नाम-रूपस्मिं यस्स नत्थि ममायितं ।

असता च न सोचति स वे भिक्खूति वुच्चति ॥८॥

(सर्वशो नामरूपे यस्य नाऽस्ति ममायितम् ।

असति च न शोचति सर्वे भिक्षुरित्युच्यते ॥८॥)

अनुवाद—नाम-रूप (= जगत) में जिसकी विल्कुल ही ममता नहीं,
न होनेपर (जो) शोक नहीं करता, वही भिक्षु कह
जाता है ।

जेतवन

बहुतसे भिक्षु

३६८—मैत्ताविहारी यो भिक्खू पसन्नो बुद्धसासने ।

अधिगच्छे पद सन्तं सङ्घारूपसम सुखं ॥९॥

(मैत्री विहारी यो भिक्षु प्रसन्नो बुद्धशासने ।

अधिगच्छेत् पद शान्त सस्कारोपशम सुखम् ॥९॥)

अनुवाद—मैत्री (-भावना) से विहार करता जो भिक्षु बुद्ध के उप
देश में प्रसन्न (= श्रद्धावान्) रहता है । (वह) सभी
सस्कारों को शमन करने वाले शान्त और सुखमय पदको
प्राप्त करता है ।

३६९—सिञ्च भिक्खू ! इम नाव सिक्ता ते लहुमेस्सति ।

छेत्त्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निव्व्राणमेहिसि ॥१०॥

(सिञ्च भिक्षो ! इमा नाव सिक्ता ते लघुत्वं एष्यति ।

छित्त्वा रागं च द्वेष च ततो निर्वाणमेष्यति ॥१०॥)

अनुवाद—हे भिक्षु ! इस वाक्यमें उन्नीची उन्नीचने पर यह तुम्हारे
 किये इच्छी हा चायेगी । राग और द्वेषको छोड़ कर फिर
 तुम निर्वाण को प्राप्त होये ।

३७०—एव छिन्धे पञ्च जहं पञ्चवुत्तरि भावये ।
 पञ्च सङ्गात्तिगो भिक्षु भोघतिप्पणो त्ति वुच्यन्ति ॥११॥
 (पंच छिन्धि पञ्च जहीहि पंचोत्तरं भावये ।
 पंचसंगात्तिगो भिक्षु 'भोघतीर्थे' इत्युच्यते ॥११॥)

अनुवाद—(जो रूप राग, मान उद्धतपना और अविद्या इन)
 पाँचको छोड़ करे; (जो मिय धारणा की कल्पना, स्मरण,
 पीछ-अव पर अधिक जोर धारणों में राग, और प्रतिहिंसा
 इन) पाँच को त्याग करे; अपरान्त (जा मज्जा, धीरे
 स्मृति, समाधि और प्रज्ञा) इन पाँच की भावना करे,
 (जो राग द्वेष, मोह माय, और झूठी धारणा इन)
 पाँच के संसारा को उच्छिन्न कर बुद्ध है (यह काम धम
 यदि धीरे अविद्याकामी) जोधों (=मार्गों) से उन्नीच
 हुआ कहा जाता है ।

३७१—भाय भिक्षु ! मा च पामदो
 मा ते कामगुणे भमस्तु चित्तं ।
 या सौहगुलं गित्थो पमत्ता
 मा कदो दुक्खमिबन्ति उप्पमानो ॥ १२ ॥
 (ध्याय भिक्षो ! मा च प्रमादः,
 मा ते कामगुण्ये भमतु चित्तम् ।

मा लोहगोल गिल प्रमत्त ,

मा क्रन्दी दु खमिदमिति दह्यमान ॥१२॥)

अनुवाद—हे भिक्षु ! ध्यानमें लगो, मत गफलत करो, तुम्हारा चित्त मत भोगोंके चक्करमें पड़े, प्रमत्त होकर मत लोहेके गोलेको निगलौ, '(हाय) यह दु ख' कहकर दग्ध होते (पीछे) मत तुम्हें क्रन्दन करना पड़े ।

३७२—नत्थि भानं अपञ्जस्स पञ्जा नत्थि अभायतो ।

यम्हि भानञ्च पञ्जा च स वे निब्बाणसन्तिके ॥१३॥

(नाऽस्ति ध्यानमप्रज्ञस्य प्रज्ञा नाऽस्त्यध्यायत ।

यस्मिन् ध्यान च प्रज्ञा च सर्वं निर्वाणाऽन्तिके ॥१३॥)

अनुवाद—प्रज्ञाविहीन (पुरुष) को ध्यान नहीं (होता) है, ध्यान (एकाग्रता) न करनेवालेको प्रज्ञा नहीं हो सकती । जिसमें ध्यान और प्रज्ञा (दोनों) हैं, वही निर्वाणके समीप है ।

३७३—सुञ्जागार पविट्ठस्स सन्तचित्तस्स भिवखुनो ।

अमानुसो रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ॥१४॥

(शून्यागार प्रविष्टस्य शान्तचित्तस्य भिक्षो ।

अमानुषी रतिर्भवति सम्यग् धर्मं विपश्यत ॥१४॥)

अनुवाद—शून्य (= एकान्त) गृहमें प्रविष्ट, शान्तचित्त भिक्षुको भली प्रकार धर्मका साक्षात्कार करते, अमानुषी रति (= आनन्द) होती है ।

३७४—यतो यतो सम्मसति खन्धान उदयव्वय ।

लभती पीतिपामोज्जं अमतं त विजानतं ॥१५॥

(यतो यतः समक्षति एकन्धामां उद्ययभ्यमम ।

समते प्रीतिप्रामोद्यं ममतं तद् विज्जातताम ॥१५॥)

अनुवाद—(पुण्य) जैसे जैसे (रूप बेहमा रुहा सस्वर विद्ध न
इत) पाँच स्वर्णोंकी उत्पत्ति और विनाश पर विचार
करता है, (जैसे ही जैसे वह) क्षामियोंकी प्रीति और
प्रमोद (रूपों) अमृतको प्राप्त करता है ।

३७५—तत्रायमावि भवति इध पठअस्स भिइस्सुनो ।

इन्द्रियमुत्ति सन्तुटटो पात्तिमोइस्से च सवरो ।

मित्त भणस्सु कस्साण सुद्धाअीबे अत्तखिने ॥१६॥

(तत्राऽप्रमादिर्भवतीह प्राप्स्य मित्तो ।

इन्द्रियमुत्ति सन्तुष्टिः प्राप्तिमोक्षे च सवर ।

मित्राणि भयस्व कस्याचानि सुद्धाओवात्तत्रितामि ॥१६॥)

अनुवाद—यहाँ मात मिडुओ घादी (में करवा) ? — इन्द्रिय-
संबन्ध सन्तोप और प्राप्तिमोक्ष (= मिडुसाके याचार) की
रक्षा । (वह, इसके बिचे) निरावस दुःख ओरिकाबाधे
अच्छे मित्रोंका सेवक परे ।

३७६—पटिसत्थारवुत्तस्स चाचारहुत्तसो सिया ।

ततो पामोअवहुत्तो पुपसस्सस्त करिस्सत्ति ॥१७॥

(प्रतिसंस्तारयुत्तस्याऽऽचारकक्षस स्यात् ।

(ततः प्रामोद्यबहुतो बुद्धस्याज्जतं करिष्यति ॥१७॥)

अनुवाद— जो सेवा सत्कार स्वभापराधा तथा याचार (वाक्य) में
विपुल है सामान्य दुःखका जन्म क्येया ।

जेतवन

पाँच सौ भिच्छु

३७७-वस्सिका विय पुप्फानि मद्दवानि पमुञ्चति ।

एव रागञ्च दोसञ्च विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो ॥१८॥

(वर्षिका इव पुष्पाणि मर्दितानि प्रमुचति ।

एव राग च द्वेष च विप्रमुचत भिक्षव ॥१८॥

अनुवाद—जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है, वैसे ही हे भिच्छुओं ! (तुम) राग और द्वेषको छोड़ दो ।

जेतव न

(शान्तकाय थेर)

३७८-सन्तकायो सन्तवाचो सन्तवा सुसमाहितो ।

वन्तलोकांससो भिक्खू उपसन्तो, ति वुच्चति ॥१९॥

(शान्तकायो शान्तवाक् शान्तिमान् सुसमाहितः ।

वान्तलोकाऽऽमिषो भिक्षु. 'उपशान्त' इत्युच्यते ॥१९॥)

अनुवाद—काया (और) वचनसे शान्त, भज्जी प्रकार समाधिमुक्त शान्ति सहित (तथा) लोकके आमिषको वमन कर दिये हुए भिच्छु को 'उपशान्त' कहा जाता है ।

जेतवन

लडगूल (थेर)

३७९-अत्तना चोदय'त्तान पटिवासे अत्तमत्तना ।

सो अत्तगुत्तो सतिमा सुखं भिक्खू विहाहिसि ॥२०॥

(आत्मना चोदयेदात्मान प्रतिवसेदात्मान आत्मना ।

स आत्मगुप्तः स्मृतिमान् सुख भिक्षो ! विहरिष्यसि ॥२०

अमुवाह—(बो) अपने ही आप को प्रेरित करेगा अपने ही आपको सञ्चाल्य करेगा, यह ध्यात्म-गुण्य (= अपने द्वारा रचित मूर्ति-संयुक्त मित्र, सुखदं विहार करेगा ।

३८०—अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।

तस्मात् सञ्जमयात्मानं अत्तं भद्रव वाणिजो ॥२१॥

(अत्ता ह्यात्मनो नाथ आत्मा ह्यात्मनो गति ।

तस्मात् समयमयात्मानं अत्तं भद्रमिदं वणिक् ॥२१॥)

अमुवाह—(मनुष्य) अपने ही अपना स्वामी है, अपने ही अपनी पति है, इसलिये अपनेका संकमी बनाने, जैसे कि सुन्दर मोदीको वणिवा (संकत करता है) ।

राज्जुव (विस्तार)

वस्त्व (विर)

३८१—आमोच्चवहुलो भिक्षु पससो बुद्धसासने ।

अधियच्छेत्तं परं सम्तं सत्कारूपसमं सुखं ॥२२॥

(आमोच्चवहुलो भिक्षु प्रसन्नो बुद्धसासने ।

अधियच्छेत्तं परं धान्तं सत्कारोपधर्मं सुखम् ॥२२॥)

अमुवाह—बुद्धके उपदेशमें प्रसन्न बहुत प्रसन्नोपुक्त भिक्षु सत्कारोको परममद करेबाता सुखमय शान्त पर को प्राप्त करता है ।

आवत्थी (पूर्वाश्रम)

धुमन (धामधोर)

३८२—ओ ह वे वहरो भिक्षु पुञ्जते बुद्धसासने ।

सो इमं लोकं पभासेति अरुभा मुत्तो'व धन्दिमा ॥२३॥

(यो ह वै दहरो भिक्षुर्युवते बुद्धशासने ।
स इमं लोक प्रभासयत्यभ्रान् मुक्त इव चन्द्रमा ॥२३॥)

अनुवाद—जो भिक्षु यौवनमें बुद्ध-शासन (= बुद्धोपदेश, बुद्ध-धर्म) में सलग्न होता है, वह मेघसे मुक्त चन्द्रमाकी भाँति इस लोकको प्रकाशित करता है ।

२५---भिक्षुवर्ग समाप्त

२६—ब्राह्मणवर्गो

बेठवन

(एक बहुत बड़ा ब्राह्मण)

३२३—द्विन्द सौत पस्कन्म कामे पनुव ब्राह्मण ! ।
सकारान क्षय अत्वा अकतञ्जूसि ब्राह्मण ! ॥१॥

(द्विन्द सौत पराक्रम्य कामान प्रनुव ब्राह्मण ! ।
सकाराना क्षयं अत्वाऽऽकतञ्जोऽसि ब्राह्मण ! ॥१॥)

अनुवाद—इ ब्राह्मण ! (तुम्हारा कर्मी) कीर्तको द्विन्द करदे, पराक्रम्य कर, (भीर) कामनाओंको भगाव । संस्कार (= कृत वस्तुओं + उपहार कर्तों) के विनाशका आवकन तु ब्राह्मण (- न कृत, विनाश) को पावेबाधा हो जायगा ।

बेठवन

(बहुतसे मिष्ट)

३२४—यदा द्वयेषु घम्मेसु पारगू होति ब्राह्मणो ।
अयस्त सखे संयोगा अस्त्य गच्छन्ति जानतो ॥२॥

(यदा द्वयोर्धर्मयोः पारगो भवति ब्राह्मण ।
अथाऽस्य सखे संयोगा अस्तं गच्छन्ति जानतः ॥२॥)

अनुवाद—जब ब्राह्मण दो धर्मों (—चित्त-सयम और भावना) में पार-
गम हो जाता है, तब उस जानकारके सभी सयोग
(= बधन) श्रुस्त हो जाते हैं ।

जेतवन

मार

३८५—यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विज्जति ।
वीतद्वरं विसञ्जुत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥३॥

(यस्स पारं अपारं वा पारापारं न विद्यते ।
वीतद्वरं विसयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३॥)

अनुवाद—जिसके पार (= आँख, कान, नाक, जीभ, काया, मन),
अपार (= रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श, धर्म) और
पारापार (= मैं और मेरा) नहीं हैं, (जो) निर्भय और
अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

(कोई ब्राह्मण)

३८६—ध्यायिं विरजमासीनं कतकिच्च अनासव ।
उत्तमत्थं अनुप्पत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४॥

(ध्यायिनं विरजसमासीनं कृतकृत्यं अनासवम् ।
उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४॥)

अनुवाद - (जो) ध्यानी, निर्मल आसनवद्ध (= स्थिर), कृतकृत्य
आसव (= चित्तमल) रहित है, जिसने उत्तम अर्थ (= सत्य)
को पा लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

भास्ती (एबीराम)

भास्ती (धेर)

३८७-बिवा तपति प्राविच्छो रति प्राभाति चन्दिमा ।
सप्तदो क्षत्रियो तपति भ्यामी तपति ब्राह्मणो ।
अथ सर्वमहोरसि युद्धो तपति तेजसा ॥५॥

(बिवा तपत्याविश्यो राजावाभाति चन्द्रमा ।

सप्तद क्षत्रियस्तपति भ्यामी तपति ब्राह्मणः ।

अथ सर्वमहोरात्र युद्धस्तपति तेजसा ॥५॥)

अनुवाद—बिबेई दूध तपता है घाठको चन्द्रमा प्रकशता है
अथर्व (होबेपर) क्षत्रिय तपता है भ्यामी (होबेपर)
माह्य तपता है, अथर्व इद राठ-बिब (अपने) तेजसे अथ-
(से अधिक) तपता है ।

वेचन

(कोई प्रकृत)

३८८-बाहितपापोति ब्राह्मणो

समचरिया समणोति बुद्धसि ।

पद्बाजमसनो मलं

तस्मा पद्बजितोति बुद्धसि ॥६॥

(बाहितपाप इति ब्राह्मण समचय-भमम इत्युच्यते ।

प्राज्ञापयन्नाऽऽत्मनो मरु तस्मात् प्रवजित इत्युच्यते ॥६॥)

अनुवाद—बिबेई पापको (बोकर) कहा बिवा वह माह्य है, जो
समताका आचरण करता है वह समच (= समच =
सन्ध्यासी) है (बुद्ध) उच्यते अपने (बिब-) मलको
इत बिवा इतीबिबे वह प्रकृत कहा अता है ।

• जेतवन

सारिपुत्त (थेर)

३८६-न ब्राह्मणस्स पहरेय्य नास्स मुचेथ ब्राह्मणो ।

धि ब्राह्मणस्स हन्तार ततो धि यस्स मुञ्चति ॥७॥

(न ब्राह्मणं प्रहरेत् नाऽस्मै मुञ्चेद् ब्राह्मणः ।

धिग् ब्राह्मणस्य हन्तार ततो धिग् यस्मै मुञ्चति ॥७॥)

अनुवाद—ब्राह्मण (= निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिये, और ब्राह्मणको भी उस (प्रहारदाता) पर (कोप) नहीं करना चाहिये, ब्राह्मणको जो मारता है, उसे धिक्कार है, और धिक्कार उसको भी है, जो (उसके लिये) कोप करता है ।

३६०-न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो

यदा निसेधो मनसो पियेहि ।

यतो यतो हिंसमनो निवत्तति

ततो ततो सम्मति एव दुक्ख ॥८॥

(न ब्राह्मणस्यैतद् अकिञ्चित् श्रेयो

यदा निषेधो मनसा प्रियेभ्यः ।

यतो यतो हिंस्रमनो निवर्तते

ततस्तत शान्त्येव दुःखम् ॥ ८ ॥)

अनुवाद—ब्राह्मणके लिये यह बात कम कल्याण (कारी) नहीं है, जो वह प्रिय (पदार्थों) से मनको हटा लेता है, जहाँ जहाँ मन हिंसासे मुक्तता है, वहाँ वहाँ दुःख (अवश्य) ही शान्त हो जाता है ।

केतवण

महापद्मपत्नी गोतमी

३६१—यस्स कायेन वाचाय मनसा नत्थि बुद्धकतं ।

सवृतं तीहि ठानेहि तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥६॥

(यस्स कायम वाचा मनसा नाऽस्ति बुद्धकतम् ।

संवृतं त्रिभिः स्थानं, तमहं भूमीं ब्राह्मणम् ॥६॥)

अनुवाद—जिसका मरु बचन कायस बुद्धकत (= पाप) नहीं होते
(जो इन) तीनों ही स्थानों से मरु (= सयम-सुख है
उस में माह्वय करता है ।

केतवण

सारिपुत्त (धेर)

३६२—यम्ही धम्मं विजानम्य सम्मासम्बुद्धवेत्ति ।

सबककथं स नमस्सेम्य अग्निहोत्रं प ब्राह्मणो ॥१०॥

(यस्माद् धम विजानीयात् सम्यक-सम्बुद्ध-वेत्तितम् ।

सत्कृत्य तं नमस्सेद् अग्निहोत्रं प ब्राह्मण ॥१०॥)

अनुवाद—जिस (उपदेशक) से सम्मत्संबुद्ध (= बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट
धम्मको जाने उस (वैद्यकी) सत्कारपूर्वक नमस्कार करे
वैसे अग्नि होत्रको ब्राह्मण ।

केतवण

अरिय ब्राह्मण

३६३—न जटाहिं न गोत्तेहिं न अज्जां होति ब्राह्मणो ।

यस्मिं सच्चञ्च धम्मो प

सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥११॥

(न जटाभिर्न गोत्रैर्न ज्ञात्वा भवति ब्राह्मणः ।

यस्मिन् सत्यं च धर्मश्च स सुचि स च ब्राह्मण ॥११॥)

अनुवाद—न जटासे, न गोत्रसे, न जन्मसे ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म हैं, वहीं, शुचि (= पवित्र) है, और वहीं ब्राह्मण है।

वैशाली (कूटागारशाला)

(पाखडी ब्राह्मण)

३६४—किं ते जटाहिदुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया ।

अबभन्तरं ते गहन बाहिरं परिमज्जसि ॥ १२ ॥

(किं ते जटाभि. दुमॅध ! किं ते ऽजिनशाट्या ।

आभ्यन्तर ते गहन बाहि परिमार्जयसि ? ॥१२॥)

अनुवाद—हे दुर्बुद्धि ! जटाओंसे तेरा क्या (बनेगा), (और) मृग-चर्मके पहिननेसे तेरा क्या ? भीतर (दिल) तो तेरा (राग आदि मलोसे) परिपूर्ण है, बाहर क्या धोता है ?

राजगृह (गृध्रकूट)

किसा गोतमी

३६५—पांसुकूलधर जन्तुं किस धमनिसन्थत ।

एकं वनस्मिं भायन्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥ १३ ॥

(पांसुकूलधर जन्तुं कृश धमनिसन्ततम ।

एक वत्ते ध्यायन्त तमह ब्रवीमि ब्राह्मणम् । १३॥)

अनुवाद—जो प्राणी फटे चीथड़ो को धारण करता है, जो दुयला पतला और नसोंसे मडे शरीरवाला है, जो अकेला वनमें ध्यानरत रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतव

(एक माहायण)

३८६—न वाह् ब्राह्मणं भूमिं योनिञ्चं मत्ति सम्भव ।
 'भो वावि' नाम सो होति स वे होति सकिञ्चनो ।
 अकिञ्चनं अनावानं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥१४॥

(न वाह् ब्राह्मणं ज्ञवीमि योनिञ्चं मातृसंभवम् ।
 'भो वावी' नाम स भवति स य भवति सकिञ्चनम् ।
 अकिञ्चनं अनावानं तमहं ज्ञवीमि ब्राह्मणम् ॥१४॥)

अनुवाद—माता जीर बोधिते ज्येष्ठ होय से मी (किसी)को ब्राह्मण नहीं कहता " वह भो वावी"; *है वह (तो) अग्रही है; मी ब्राह्मण उसे कहता हूँ जो अपरिमती जीर खेनेकी (इष्ट्या) व रखनेवाला है ।

राजगृह (असुरपन)

उमासेन (धेठोपुत्र)

३८७—सर्वसङ्गोअन स्रष्ट्वा यो यं न परित्तस्सति ।
 सङ्गातिगं विसङ्गुत्तं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥१५॥

(सर्वसङ्गोअनं स्रष्ट्वा यो यं न परिभ्रस्यति ।
 सङ्गातिगं विसङ्गुत्तं तमहं ज्ञवीमि ब्राह्मणम् ॥१५॥)

*उस समयके ब्राह्मण ब्राह्मणका ही "भो" कहकर संबोधन किया करते थे ।

अनुवाद—जो सारे सयोजनां (= बंधनों) को काटता है, जो कि भय नहीं खाता, जो सग और आसक्ति से विरत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतयन

(दो ब्राह्मण)

३१८—छेत्वा नन्दि वरत्राञ्च सन्दान सहनुक्कम ।

उक्खित्तपलिघं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥१६॥

(छित्त्वा नन्दि वरत्रा च सन्दान सहनुक्कमम् ।

उत्क्षिप्तपरिघं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१६॥)

अनुवाद—नन्दी (= क्रोध), वरत्रा (= वृष्णा रूपी रस्सी), सन्दान (= ६२ प्रकार के मतवाटरूपी पगहे), और हनुक्कम (= मुँह पर बाँधने के जावे) को काट एवं परिघ (= जूए) को फेंक जो बुद्ध (= ज्ञानी) हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुयन)

(अक्रोस) भारद्वाज

३१९—अक्रोस बधवन्धञ्च अदुट्ठो यो तित्तिक्खति ।

खन्तिबल बलानीक तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥१७॥

(अक्रोशन् बध-वध च अदुष्टो यस्तित्तिक्खति ।

खान्तिबल बलानीक तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१७॥)

अनुवाद—जो बिना दूषित (चित्त) किए गाली, बध और बन्धनको सहन करता है, चमा बल ही जिसके बल (= सेना)का सेनापति है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वेतम

(एक ब्राह्मण)

३६६—न चाह ब्राह्मण भूमि योनिर्न मत्ति सम्भव ।
 'भो धावि' नाम सो होति स वे होति सकिञ्चनो ।
 अकिञ्चन अनावानं तमह भूमि ब्राह्मण ॥१४॥

(न ब्राह्मं ब्राह्मणं ब्रवीमि योनिर्न मातृसंभवम् ।
 'भो धावी' नाम स भवति स वै भवति सकिञ्चन ।
 अकिञ्चनं अनावानं तमह ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१४॥)

अनुवाद—माता और योनिसे उत्पन्न होव से मैं (किन्हीं) को ब्राह्मण नहीं कहता यह 'भो धावी', *है यह (तो) संझी है; मैं ब्राह्मण पसे कहता हूँ जो अपरिमयी और बेनेकी (इच्छा) न रखनेवाला है ।

राजगृह (वेङ्कन)

जम्भोव (धेहीपुत्र)

३६७—सङ्गसत्तिगं विसङ्गुत्त तमह भूमि ब्राह्मण ।
 सङ्गातिगं विसङ्गुत्त तमह भूमि ब्राह्मण ॥१५॥

(सर्वसंयोजनं क्षित्वा यो वे न परित्रस्यति ।
 सङ्गातिगं विसङ्गुत्तं तमह ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१५॥)

*उस समयके ब्राह्मण ब्राह्मणको ही "भो" कहकर संबोधन किया करते थे ।

अनुवाद--जो यहीं (= इसी जन्म में) अपने दुःखों के विनाशको जान लेता है, जिसने अपने बोरु को उतार फेंका, और जो आसक्तिरहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (गृध्रकूट)

खेमा (भिष्णुषी)

३०४-गम्भीरपञ्जं मेधाविं सगगामगस्स कोविदं ।

उत्तमत्य अनुपपत्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥२१॥

(गभीरप्रज्ञं मेधाविन मार्गानार्गस्य कोविदम् ।

उत्तमार्थमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२१॥)

अनुवाद--जो गम्भीर प्रज्ञावाला, मेधावी, मार्ग अमार्ग का ज्ञाता, उत्तम पदार्थ (= सत्य) को पाये है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वैतवन

(पञ्चभारवासी) तिस्स (धेर)

४०४-असपट्ठ गहटठेहि अनागारेहि चूभयं ।

अनोकसारिं अप्पिच्छ तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥२२॥

(अससूष्ट गृहस्थे. अनागारेश्चोभाभ्याम् ।

अनोक सारिण अल्पेच्छ तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२२॥)

अनुवाद--घरवाले (= गृहस्थ) और बेघरवाले दोनों ही में जो लिप्त नहीं होता, जो बिना ठिकाने के घूमता तथा बेचाह है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वैतवन

(कोई भिष्णु)

४०५-निधाय दण्ड भूतेषु तसेसु थावरेसु च ।

यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥२३॥

राजगृह (बेसुवन)

साविण (धर)

४००—अक्कोषनं वज्रयन्त सीसवस्त अनुस्तवं ।
वन्तं अस्तिमसारीर तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥१८॥

(अक्कोषन वज्रयन्तं सीसवस्तं अनुभुतम् ।
वास्तं अस्तिमसारीरं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१८॥)

अनुवाद—जो अक्कोष मती शीसवान, बहुभुत अन्वयी (= इन्द्र)
और अस्तिम शरीरवाला है, उसे मैं वा ब्रह्मण हूँ ।

राजगृह (बेसुवन)

अप्पकवववा (भेरी)

४०१—वारिं पोकसरपत्ते 'व आरग्गदिथ सासपो ।
मो न लिप्पति कामेसु तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥१९॥

(वारिं पुञ्जरपच्च इव, आराप इव सर्पेण ।
मो न लिप्पते कामेसु तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥१९॥)

अनुवाद—कमल के पतेपर अक्ष, और जारे के मोड़ पर सर्पों, की
भाँति जो मोर्चा में लिप्य नहीं जाता वस मैं ब्राह्मण
कहता हूँ ।

बेसुवन

(जोई माइली)

४०२—मो बुद्धसस पज्जानाति इमेव अयमत्ततो ,
पन्नभारं विसम्भुत्तं तमहं भूमिं ब्राह्मणं ॥२०॥

(मो बुद्धस्य प्रजानातीहिव अयमात्मनः ।
पन्नभारं विसम्भुत्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२०॥)

राजगृह (वेणुवन)

पिलिन्द वच्छ (थेर)

४०८-अकवकसं विञ्जापनि गिरं सच्चं उदीरये ।

याय नाभिसजे किञ्च तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२६॥

(अकर्कशां विज्ञापनीं गिर सत्या उदीरयेत् ।

यया नाभिसजेत् किञ्चित् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२६॥)

अनुवाद- (जो इस प्रकार की) अकर्कश, यादरयुक्त (तथा) सच्ची वाणी को बोले कि, जिसमे कुछ भी पीड़ा न होवे, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

कोई स्थविर

४०९-यो 'ध दीघ वा रस्सं वा अणु थूल सुभासुभं ।

लोके अदिन्नं नादियते तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२७॥

(य इह दीर्घं वा ह्रस्व वाऽणु स्थूल शुभाऽशुभम् ।

लोकेऽदत्तं नादत्ते तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२७॥)

अनुवाद- (चीज) चाहे दीर्घ हो या द्वव, मोटी हों या पतली, शुभ हो या अशुभ, जो ससार में (किसी भी) बिना दीर्घ चीज को नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

सारिपुत्त (थेर)

४१०-आसा यस्स न विज्जन्ति अस्मि लोके परस्मि च ।

निरासय विसयुत्त तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥२८॥

(आशा यस्व न विद्यन्तेऽस्मिन् लोके परस्मिन् च ।

निराशय विसयुक्त तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२८॥)

(निषाय बन्धं भूतेषु जसेषु स्थावरेषु च ।

यो न हन्ति न घातयति तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२३॥)

अनुवाद—जर धर (सभी) प्राणियों में प्रहारकित हो, जो न मारता है; न मारने की प्रेरणा करता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेलवर

चार ग्रामवेर

४०६—अथिबद्धं विरुद्धेषु अस्तवण्डसु निवृत्तम् ।

सावानेसु घनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥२४॥

(अथिबद्धं विरुद्धेषु, अस्तवण्डेषु निवृत्तम् ।

सावानेष्वनादानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२४॥)

अनुवाद—जो विरोधियों के बीच विरोध रहित रहता है; जो बंध कारियों के बीच (बन्ध-रहित) रहित है संघर्षियों में जो संघ-रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजपूह (पेछरन)

महापण्डक (वेर)

४०७—यस्त रागो च बोसो च मानो मक्खो च पातितो ।

सासपोसि आरग्गा तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥२५॥

(यस्य रागश्च द्वेषश्च मानो अमदश्च पातितः ।

सर्वत्र दुस्साञ्जरात् तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२५॥)

अनुवाद—घारे के अर सरयो की मति; विषक (पिचसे) राव, द्वेष माव, बाव, चेंक दिवे पवे हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

चन्दास (थेर)

४१३-चन्द्रं, व विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलं ।

नन्दीभवपरिक्षीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥३१॥

(चन्द्रमिव विमल शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम् ।

नन्दीभवरिक्षीण तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३१॥)

अनुवाद—जो चन्द्रमाकी भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ = अनाविल है,
(तथा जिसकी) सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे
मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कृषिडया (कोलिय)

सीवलि (थेर)

४१४-यो इमं पलिपथं दुग्गं ससार मोहमच्चगा ।

तिण्णो पारगतो भायी अनेजो अकथंकथी ।

अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥३२॥

(य इमं प्रतिपथं दुग्गं ससार मोहमत्यगात् ।

तीणं पारगतो ध्याय्यनेजो अकथंकथी ।

अनुपादाय निर्वृत. तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३२॥)

अनुवाद—जिसने इस दुर्गम ससार, (=जन्म मरण) के चक्कर में
झालनेवाले मोह (रूपी) उलटे मार्ग को त्याग दिया,
जो (संसार से) पारगत, ध्यानी तथा तीर्ण (=तर गया)
है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

अनुवाद—इस लोक और परलोक के विषय में जिसकी आशाएँ (= आर्षा) नहीं रह गई हैं, वो आशारहित और आसक्तिरहित है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वेतस्य

महामोक्षदाय (वेर)

३११—यस्याऽऽत्म्या न विज्जन्ति शक्यं शक्यं ।
अमतायमायमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२६॥

(यस्याऽऽत्म्या न विज्जन्ति शक्यं शक्यं ।
अमतायमायमनुप्राप्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥२१॥)

अनुवाद—जिसको आत्म्य (= तुष्या) नहीं है वो कभी शक्य शक्य शक्य (-पद) का कहनेवाला है जिसने पाके अमृत व पाकिबा; उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

आकस्ती (पूर्वात्म)

वेत (वेर)

३१२—यो' य पुण्यं पापं तमो सर्वा उपपन्नगा ।
असोकं विरजं शुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३०॥

(य इह पुण्यं य पापं तमो सर्वा उपपन्नगात् ।
असोकं विरजं शुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३०॥)

अनुवाद—जिसने कहीं पुण्य और पाप दोनों की आशरित की ओर दिवा वो शोकरहित, निर्मल (और) शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

चन्द्राम (थेर)

४१३-चन्द्रं, व विमलं सुद्धं विप्पसन्नमनाविलं ।

नन्दीभवपरिक्खीणं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥३१॥

(चन्द्रमिव विमलं शुद्धं विप्रसन्नमनाविलम ।

नन्दीभवरिक्खीण तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३१॥)

अनुवाद—जो चन्द्रमाकी भाँति विमल, शुद्ध, स्वच्छ = अनाविल है,
(तथा जिसकी) सभी जन्मों की तृष्णा नष्ट हो गई है, उसे
मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

कृण्डिया (कोलिय)

सीवलि (थेर)

४१४-यो इमं पलिपथं दुग्गं ससारं मोहमच्चगा ।

तिण्णो पारगतो भायी अनेजो अकथंकथी ।

अनुपादाय निब्बुतो तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३२॥

(य इमं प्रतिपथं दुग्गं ससारं मोहमत्यगात् ।

तोर्णं पारगतो ध्याय्यनेजो अकथंकथी ।

अनुपादाय निर्वृत तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३२॥)

अनुवाद—जिसने इस दुग्गं संसार, (=जन्म मरण) के चक्कर में
डालनेवाले मोह (रूपों) उलटे मार्ग को त्याग दिया,
जो (संसार से) पारंगत, ध्यानी तथा तोर्ण (=तर गया)
है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

श्लोक

सुन्दर स्मृत (धेर)

४१५-यो 'ध कामे पहस्वान जनागारो परिब्रजेत् ।
 कामभयपरिब्रजोर्णं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥३३॥
 (य इह कामान् प्रहायाऽभागात् परिब्रजेत् ।
 कामभयपरिब्रजोर्णं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३३॥)

अनुवाद—जो यहाँ भोगों को छोड़ बेपर हो प्रवृत्त (= सुन्यासी) हो गया है जिसके भोग और शर्म नाश हो गए उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

सुन्दर (श्लोक)

श्लोक (धेर)

४१६-यो 'ध तप्यं पहस्वान जनागारो परिब्रजेत् ।
 तप्याभयपरिब्रजोर्णं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥३४॥
 (य इह तप्यां प्रहायाऽभागात् परिब्रजेत् ।
 तप्याभयपरिब्रजोर्णं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३४॥)

अनुवाद—जो यहाँ तप्या को छोड़ बेपर बन प्रवृत्त है जिसके तप्या और (पुनर् शर्म नाश हो गये उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

सुन्दर (श्लोक)

(श्लोकार्थं कथं भिन्न)

४१७-हिस्वा मामुसक्तं योग विद्यं योग उपस्यगात् ।
 सर्वयोगविसयुक्तं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम् ॥३५॥
 (हिस्वा मानुषकं योगं विद्यं योग उपस्यगात् ।
 सर्वयोगविसयुक्तं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३५॥)

अनुवाद—मानुष (-भोगों के) लाभोंको छोड़, दिव्य (भोगों के) लाभको भी (जिसने) त्याग दिया, सारे ही लाभोंमें जो आसक्त नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४१—हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च सीतिभूतं निरूपधि ।

सर्वलोकाभिभुं वीरं तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥३६॥

(हित्वा रतिं चाऽरतिं च सीतिभूत निरूपधिम् ।

सर्वलोकाऽभिभुव वीर तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३६॥)

अनुवाद—रति और अरति (—घृणा) को छोड़, जो शीतल-स्वभाव (तथा) क्लेशरहित है, (जो ऐसा) सर्वलोकविजयी, वीर है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (वेणुवन)

वह्नीस (थेर)

४१९—च्युति यो वेदि सत्त्वान उपपत्तिञ्च सर्वसो ।

असत्ता सुगतं बुद्ध तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥३७॥

(च्युति यो वेद सत्त्वाना, उपपत्तिं च सर्वसः ।

असक्त सुगत बुद्ध तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३७॥)

अनुवाद—जो प्राणियों की च्युति (=मृत्यु) और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, (जो) अशक्तिरहित सुगत (=सुदर) गति को प्राप्त) और बुद्धी (=ज्ञानी) है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

४२०—यस्स गतिं न जानन्ति देवा गन्धर्वमानुसा ।

स्त्रीणासवं अरहन्त तमहं ब्रूमि ब्राह्मण ॥३८॥

(यस्य गतिं न ज्ञासन्ति देव-गंधम मानुषाः ।

कीचाज्जरं अरहन्ते तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३८॥)

अनुवाद—विस्मयी गति (=पूर्व) को देखा मर्षं और मनुष्य
की जाते जो कीचाज्जर = उपनिषद्दिष्ट) और
अहंत् है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

राजगृह (बेहवन)

धम्मदिशा (घेरी)

४२१ यस्त पुरे ख पण्डा च मऊळ ख नत्थि किञ्चनं ।

अकिञ्चनं मनावानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥३९॥

(यस्य पुरख पण्डाख मध्ये ख नाऽस्ति किञ्चन ।

अकिञ्चनं मनावानं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥३९॥)

अनुवाद—विष्णुके पूर्व, और पण्डात् और मऊळके कुछ नहीं है, जो
परिष्कारित = चादावरहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जेतवन

अजुग्गिमात्त (घेर)

४२२-उत्तमं पवरं धोरं महसि विजितायिनं ।

अनेजं स्वातकं बुद्धं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४०॥

(अपमं प्रवर धीर महसि विजितवन्तम् ।

अनेजं स्वातकं बुद्धं तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४०॥)

अनुवाद—(जो) अपम (= अश्रेष्ठ), प्रवर, धीर, महसि, विजित
अपम स्वातक धीर बुद्ध है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

जैतवन

देवहित (ब्राह्मण)

४२३-पुण्वेनिवास यो वेदि सग्गापायञ्च पस्सति ।
 अथो जातिक्खयंपत्तो अभिञ्जावोसितो मुनि ।
 सब्बवोसितवोसान तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥४१॥

(पूर्वनिवास यो वेद स्वर्गाऽपाय च पश्यति ।

अथ जातिक्षणयप्राप्तोऽभिज्ञाव्यवमितो मुनि ।

सर्वव्यवसितध्यवसान तमहं ब्रवीमि ब्राह्मणम् ॥४१॥)

अनुवाद -जो पूर्व जन्म को जानता है, स्वर्ग और अगति को जो देखता है; और जिसका (पुनर्-)जन्म चीण हो गया (जो) अभिज्ञा (= दिव्यज्ञान) परायण है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

२६---ब्राह्मणवर्ग समाप्त

(इति)

गाथा-सूची

अक्रककसं	२६।२६	अत्ता हि अत्तनो	१२।४
अकत दुककत	२२।६	अत्थग्ग्हि जातग्ग्हि	२३।१२
अककोच्छि म	१।४,३	अथ पापानि	१०।८
अककोधन वतवन्त	२६।१८	अथवस्स अगारानि	१०।१२
अककोधेन जिने	१७।३	अनवट्ठितचित्तस्स	३।६
अचरित्त्वा ब्रह्म-	११।१०,११	अनवस्सुत चित्तस्स	३।७
अककोस वधवन्ध	२६।१७	अनिक्कसावो कासाव	१।६
अचिर वत'य	३।६	अनुपुब्बेन मेघावी	१८।५
अञ्जा हि लाभु-	५।१६	अनुपवादो अनुपघातो	१४।७
अहीन नगर	११।५	अनेकजातिससा-	११।८
अत्तदत्थ	१२।१०	अन्धभूतो अय	१३।८
अत्तना चोद-	२५।२०	अपि दिब्बे	१४।६
अत्तना' व कत	१२।५	अपुञ्जलाभो च	२२।५
अत्तना' व कत पाप	१२।६	अप्पका ते	६।१०
अत्तानञ्चे तथा	१२।३	अप्पमत्तो अय	४।१३
अत्तानञ्चे पिय	१२।१	अप्पमत्तो पमत्तेसु	२।६
अत्तानमेव पठमं	१२।२	अप्पमादरता होथ	२३।८
अत्ता ह वे जित	८।५	अप्पमादरतो भिक्खू	२।११,१२
अत्ता हि अत्तनो	२५।२१	अप्पमादेन भववा	२।१०

अप्यमाद्यो, मर्त	२११	आसा मरु	२११२८
अप्यमि चे सहित	२१२	इष पुरे	२११७
अप्यत्रामोपि चे	२५०	इष तप्यति	२१२७
अप्यस्तुता	२११७	इष नम्यति	२१२८
अमये च मय	२२१२२	इष मोदति	२१२९
अमित्वरेष	६११	इष वस्य	२१२४
अमिवादनतीक्ष्ण	८११	इष सोचति	२१२५
अमूतवादी निरख	२२११	उच्छिद्य सिमेह-	२०११३
अनता 'व मलं	१८२९	उद्धानकालन्दि	२१८
अयोगे युष्म	१६११	उद्धानवतो सतिम्तो	३१४
असङ्गतो येपि	१११४	उद्धानेन	२३
असम्मिता ये	२२१११	गच्छिहे	१११२
असज्जं वज्ज	२२१११	उवङ्गं हि	११५,१०
अविच्छेदं त्रिकयेसु	२११२४	उपनीतवयो	१८२१
असुगन्धायमला	१८२७	उष्णुष्मन्ति	७११
अनर्थं मावन	२११४	उसमं पवर	२११४०
असंसङ्ग	१११२२	एङ्गं धम्मं	११११०
अतारे शारमतिनो	११११	एङ्गुलं चरितं	२११११
अनाहसेन धम्मन	११११	एङ्गावर्नं एङ्गसेस्य	२१११५
अनुमानुसस्ति	११८	एङ्गं पां सरणं	१५११४
असङ्गो अङ्गठम्म	७१८	एङ्गं दन्तं	१५११३
अस्था यथा मत्री	१११५	एङ्गमन्वरसं	१११७
अहं मागा' व	२१११	एङ्गं त्रिसेवता	१११
अहितका ये	१७१५	एङ्गं हि सुन्दे	१११
अ-कातं च पद	१८२२ २१	एष फलधिर्मं	१११८
अथाप्यनमा	१५१८	एषमो पुरित	१८२४
अ-उकारभूते	७११६	अरमनाधि-	३११

एसोंव मगो	२०।२	चरन्ति बाला	५।७-
श्रोत्रदेव्य	६।२	चिरप्पत्रानि	१६।११
कण्ठ धम्मं	६।१२	चुति यो वेदि	२६।३७
कियिरञ्चे	२०।८	छन्दजातो	१६।१०
कामतो जायते	१६।७	छिन्द सोत	२६।१
क्रायप्पकोव	१७।११	छेत्वा नन्दि	२६।१६
कायेन स्वरो	२५।२	जय वेर परुवति	१५।५
कायेन सवुता	१७।१४	जिघ्रच्छ्रापरमा	१५।७
कासावकण्ठा	२२।२	जीरन्नि वे राज-	११।६
किच्छो मनुस्स-	१४।४	क्काय भिक्खू	२५।१२
किं ते जटाहि	२६।१२	क्कार्थि विरज-	२६।४
कुम्भूपम	३।८	तच्च कम्म	५।६
कुसो यथा	२२।६	तण्हाय जायते	१६।८
को इम पठविं	४।१	ततो मला	१८।६
कोध जहे	१७।१	तत्राभिरति	६।१३
लन्ती परम तपो	१४।६	तत्रायमादि	२५।१६
गतद्धिनो	७।१	तथेव क्त-	१६।१२
गग्भमेत्ते	६।११	तपुत्त-पसु-	२०।१५
गग्भीरपञ्ज-	२६।२१	त वो वदामि	२४।४
गहकारक	११।६	तसिनाय पुरस्खता	२४।१०,६
गामे वा यदि	७।६	तस्मा पिय	१६।३
चक्खुना	२५।१	तस्मा हि वार	१५।१२
चत्तारि ठानानि	२२।४	ति णदोसानि	२४।२३,२४,२५,२६
चन्दं तगर	४।१२	तुन्दहि किच्च	२०।८
चन्द' व विमल-	२६।३१	ते क्कार्थिनो	२।३
वे तादित्ते	१४।१८	न ता माता	३।११
वेसे सम्पन्न-	४।१४	न ताव ता धम्म-	१६।८

दरन्ति वे	१८१५	न तेन अरियो	१८१५
दन्तं नयन्ति	२११२	न तेन वेद्ये	१८१५
द्विधा वपति	२६१५	न तेन पंडितो	१८१५
द्विधो द्विधं	१११	न तेन भक्तू	१८१५
दीपा जागरती	५११	न ऽन होषि	१८१५
दुःखं	१५१११	नत्वि मन्त्रं	२५१११
दुःखिमाहस्त	१११	नत्वि राग	१५११
दुष्पुष्प-जं	२११११	नत्वि राग-	१८११०
दुष्कामी	१५११५	न गम्य-	१११११
दूरगमं	११५	न परैर्षं	५१०
दूरे सन्तो	२१११५	न पुष्पग्रान्था	५१११
धनपक्षिको	२२१५	न ब्राह्मण्यस्त-	२६१०
धर्मं चरे	११११	न ब्राह्मण्यस्त-	२६१८
धम्मतीति	६१४	न मजे	६११
धम्मायमो	२५१५	न सुखकन	१६१६
न अक्षेत्	६१६	न भोगेन	१६१११
न अ-तलिकले	६१११, ११	न वाक्कुर्या-	१६१०
न अहाप्य	१५१८	न वे कुरिया	१११११
नगरं तथा	२२११	न सन्ति पुष्पा	२१११
न आह	२६११५	न सौख्यव-	१६१११
न आहु	१०१८	न हि एतेहि	२११५
न अद्यहि	१६१११	न हि पापं	५१११
न सं कर्म	५१८	न हि बेरेन	११५
न सं दत्तं	१५१११	निह गतो	२५११८
निधानं दयं	२६१२१	पगतो जामते	१६१५
निधीनीय	६११	पुष्पग्रन्थे पुरिसो	१११
नेकं	१५११	पुष्पा मं त्पि	५११

(१६३)

नेत खो सरण	१८११	पुञ्जेनिवास	२६।८१
नेव देवो	८।६	पूजागृहे	१४।१७
नो च लभेथ	२३।१०	पेमतो जायते	१६।५
पञ्च छिन्दे	२३।११	पोराणमेत	१७।६
पटिसन्धार	२५।१७	फन्दन चपल	३।१
पठवीसमो	७।६	फुसामि नेक्खम्म	१६।१७
पण्डुपलासो	१८।१	फेनूपम	४।३
पयव्या एकरज्जेन	१३।१२	भद्रो पि	५।२
पमादमनु-	२।६	मग्गानट्ट गिको	२०।१
पमादमप्पमादेन	२।८	मत्तासुखपरिच्चागा	२१।१
पादुक्खूपदानेन	२१।२	मधू'व मञ्जती	५।१०
परवज्जानुपस्सि-	१८।१६	मनुजस्स पमत्त-	२४।१
परिजिण्णमिदं	११।३	मनोप्पकोप	१७।१३
परे च ने	१।६	मनो पुब्बगमा	१।१,२
पविवेकरस	१५।६	ममेव कत-	५।१५
पसुकूलधर	२६।१०	मलित्थिया	१८।८
पस्स चित्तकत	११।२	मातर पितर	२१।५,६
पाणिग्घि चे	६।६	मा पमाद-	२।७
पापञ्चे पुरिसो	६।२	मा पियेहि	१६।२
पापानि परि-	१६।१४	मा' वमञ्जेथ पाप-	६।६
पापो' पि पस्सति	६।४	मा' वमञ्जेथ पु	६।७
पामोज्ज वह-	२५।२२	मा वोच फरुस	१०।५
मासे मासे कुस-	५।११	यस्स कायेन	२६।६
मासे मासे सहस्सेन	८।७	यस्स गर्ति	२६।३८
मिद्धी यथा	२३।६	यस्स चेत समु-	१६।८
ञ्मुच पुरे	२४।१५	यस्स चेत समु-	१८।१६

मुहुत्तमपि	५१६	यस्त छत्तिमती	२४१६
मोक्षविहाटी	२५१६	यस्त वासिनी	१४१२
य अर्धमस्त	१२१६	यस्त जितं	१४११
यं एसा सहती	२४१२	यस्त पार्य	१४१०
यु किम्बि पिठ	८६	यस्त पार अपारं	२४१६
यं किम्बि सि	२२१०	यस्त पुरे य	२४११६
यन्वे विम्बू	१०१६	यस्त रागो य	२४१२५
यतो यतो सम्म-	२५११५	यस्तासया न	१४१२६
यथागार बुष्कन्नं	११२६	यस्तासवा	७४
यथागारं सुष्कन्नं	११२४	यस्मिन्निवाधि	७६
यथा ददधेन	१ १०	यानि' मानि	११४
यथापि पुष्क-	८१	याव जीवमि	५६
यथापि भमरो	५१६	याक्वेव अन्तथाव	५१२३
यथापि मूले	२४१५	याव हि बनो	२ १२२
यथापि रूदो	६१०	यं य लो	६१२१
यथापि बन्धिर	४८६६	ये कान्तमुता	१४११
यथा बुष्कन्नक	१४१४	ये रागरसा	१४१२४
यथा सङ्कार	११२५	येष य सुसमा-	२१४
यथा इपेसु	२४१२	येषं तन्मिषयी	७१६
यथा यम	२४१२	येषं तन्मीधि	६१२४
य हि किम्ब	२११०	यो अप्तुस्त	६१२
यमिह स्र्धं य	१११६	यो इमं पक्षिपय	२४१३२
यौगा ये जायती	२ १३	यधी पकीरं	१०१२२
यो य गाथा-	८६	यन्मय बजतो	२४१२४
यो न पुष्के	१४१६	यन क्षिपय	२ १२३
यो य बुष्कन्न	२४१२२	यं अस्तवरा	२४१६
यो य कन्तकठाक-	११२	यस्मिन्ना विव	२५१२८

यो च वस्ससत	८।८	बहुम्पि चे	१।१६
यो च समेति	१६।१०	बहु वे सरण	१४।१०
यो चेत सहती	२४।३	वाचा नुरक्खी	२०।६
यो दण्डेन	१०।६	वाणिजो' व	६।८
यो दुक्खस्स	२६।२०	वारिजो' व	३।२
यो' ध कामे	२६।३३	वालसगतचारी	१५।११
यो' ध तरह	२६।३४	वाहितपापो	२६।६
यो' ध दीघ	२६।२७	वितक्कपमथितस्स	२४।१६
यो' ध पुञ्ज	२६।३०	वितक्कूपसमे च	२४।१७
यो' ध पुञ्ज	१६।१२	वीततरहो अनादानो	२४।१६
यो निव्वानथो	२४।११	वेदनं फस्स	१०।१०
यो पाणमतिपातेति	१८।१२	स चे नेरेसि	१०।६
यो वालो	५।६	स चे लमेथ	२६।६
यो मुख-	२५।४	सच्च भणो	१७।४
यो वे उप्पतित	१७।२	सदा जागरमानान	१७।६
यो सहस्स-	८।४	सद्धो सीलेन	२१।१४
यो सासन	१२।८३	सन्तकायो	२५।१६
यो ह वे दहरो	२५।२३	सन्त तस्स	७।७
रतिया जायते	१६।६	सव्वत्थ वे	६।८
रमणीयानि अरञ्जानि	७।१०	सव्वदान	२४।२१
राजतो वा	१०।११	सव्वपापस्स	१।४५
सव्वसयोजन	२६।१५	सुखो बुद्धान	१।१६
सव्वसो नाम-	२५।८	सुजीव	१८।१०
सव्वाभिभू	२४।२०	सुञ्जागार	२५।१४
सव्वे तसन्ति	१०।१,२	सुदस्स वज-	१८।१८
सव्वे धम्मा	२०।७	सुदुहसं	३।४
सव्वे सङ्खारा अ-	२०।५	सुप्पबुद्ध	२१।७—१२

सभ्ये सद्गुणानां दु-	२०१६	सुमानुपस्थि	११०
सरित्वानि	२४५८	सुराभरकपानं	१८५१
साभे	२५५९	सुसुल बत	१५११-४
सपन्ति सभ्य-	२४१७	सेखा पठन्ति	४१२
सहस्रभिः च गाथा	८२२	सेम्यो ज्ञाना-	२२१३
सहस्रभिः च वाचा	८२१	छली यथा	९१९
साधु इत्थन-	१५५१	सी करोहि	१८२२, ४
सारम्भ	११२२	इत्यसम्भतो	१५५३
सिम्भ भिक्षु	१५५१	हनन्ति मोमा	१४१२२
सीखइत्थन-	१९१६	ईसा' भिक्षु-	१३१६
सुफ्रानि	१९१७	द्विष्या यामुसक	२९१३५
सुलकाभानि	१ १३, ४	द्विष्या रति	२९१३६
सुलं वाच	२३१२४	द्विटीनिषेपो	१ १२५
सुला मधे ध्यता	२३१२३	द्विटीमता न	१८२११
		द्विनं धर्म	१९१२

शब्द--सूची

अकिञ्चन — राग, द्वेष और मोह से रहित ।

अनुमय (= अनुशय — कामराग (= भोगवृत्ता), प्रतिव (= प्रति-
हिमा), दृष्टि (= उल्टी धारणा), विचिकित्सा (= सन्देह),
मान (= अभिमान), भवराग, (= समागमे जन्मनेकी वृत्ता),
अविद्या ।

अरिय (=) — चोतआपन्न, मङ्गदागामी, अनागामी, अर्हत्
(= मुक्त) ।

आभस्वर (= आभान्वर) — रूपलोफ (= जहाँके प्राणियोंका शरीर
प्रकाशमय है) की एक देवजाति ।

आयतन — आँख, मन, नाक, जीभ काया (= त्वरु) और मन ।

आसव (= आम्बव, मल), — कामाम्बव (= भोगसवधी मल), भवाम्बव
(= भिन्न भिन्न लोकोंमें जन्म लेनेका लालचरूपी मल),
दृष्ट्याम्बव (= उल्टी धारणा रूपी मल), अविद्याम्बव

उपधि (= उपाधि) — स्कन्ध, काम, क्लेश और कर्म ।

स्वन्ध (= स्कन्ध) — रूप (= परिमाण और तोल रखनेवाला तत्त्व),
वेदना, मज्ञा, सम्कार, (वेदना आदि तीन, रूप और

विज्ञान का सम्बन्ध उत्पन्न विज्ञानकी अवस्थाय है), विज्ञान
(= चेतना, परिमाण और ठोस न रखनवाला तत्त्व) ।

भेद—(=स्पर्शिक) ब्रह्म भिन्न ।

भेदी—(=स्पर्शिक) ब्रह्म भिन्नुत्पी ।

पातिमोक्त (= प्रातिपाद्य)—विनय सिद्धमें कई भिन्न-भिन्नशक्तियों के
पाराजिक, संघादिसंघ आदि नियम । भिन्नता के लिए
उनकी संख्या इस प्रकार है—

	प्राती विनय	(तथासुखाद्य)
१ पाराजिक	४	८
२ संघादिसंघ	११	११
३ अनियत	२	२
४ निश्चरिगिक	२१	१
५ पाठान्तरिक	१७	६
६ प्रातिदशनीय	४	४
७ शैव	७३	१११
८ अतिकरब्यसमथ	७	७
	<hr/> २१८	<hr/> २६१

पर—इन्हीं ऊपर और ब्रह्मम नीचेका इच्छता, जिसे वैदिक साहित्य
में प्रजापति कहते हैं । राघ, ह्येय, मोह आदि मन्त्री बुद्धयुक्तिर्वा,
जो सत्त्वके मार्गमें बाधक होती हैं उन्हें ही कर्म के तौर पर
मार नाम का एक देवता माना गया है ।

सम्बन्धन (= संघादन)—सत्त्वानुदधि (= जीवन्तकी कर्म-विज्ञानके
सम्बन्धसे न मान कर, कावाम एक निरव चेतनकी प्रकृत्य
कल्पना करना) विधिक्रिया (= संदेह), शीघ्रतत्पर्यमर्त

(=परम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न न करके, बाह्य आचार और व्रतों से कृतकृत्यता मानना), कामराग (स्थूल शरीर-धारियों के भोगों की तृष्णा), रूपराग (=प्रकाशमय शरीर धारियों के भोगोंकी तृष्णा), अरूपराग (=रूपरहित देवताओं के भोगोंकी तृष्णा) प्रतिघ्न (=प्रतिहिंसा), मान (=अभिमान), औद्धत्य (=उद्धतपना), और अविद्या ।

गिष्कङ्ग (=सबोधयग) — स्मृति, धर्मविचय (=धर्मपरीक्षा), वीर्य (=उद्योग), प्रीति, प्रशब्धि (=शान्ति), समाधि, उपेक्षा ।

शरीर (=श्रामशरीर—भिन्नु होनेका उम्मेदवार बौद्ध साधु, जिसे भिन्न रूपने अभी उपमपन्न (=भिन्नु दीक्षासे दीक्षित) नहीं किया ।

ल (=शील)—हिमा-विरति, मिथ्याभाषण-विरति, चोरीसे विरति, व्यभिचारविरति, मादक द्रव्य सेवन-विरति—यह पाँच शील (=सदाचार) गृहस्थ और भिन्नु दोनों के समान हैं । अपराह्न-भोजन त्यागी, नृत्य गीत त्याग, माला आदि के शृंगार का त्याग, महार्घ शय्या का त्याग, तथा सोने चाँदी का त्याग, यह पाँच केवल भिन्नुओं के शील हैं ।

व (=शैक्ष्य) — अर्हत् (=मुक्त) पदको नहीं प्राप्त हुए, आर्ह (=स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अनागामी) शैक्ष्य कहे जाते हैं, क्योंकि वह अभी शिक्षणीय हैं ।

गितापन्न (=स्रोतआपन्न) — आध्यात्मिक विकास करते जब प्राणी इस प्रकार की मानसिक स्थिति में पहुँच जाता है, कि, फिर वह नीचे नहीं गिर सकता और निरन्तर आगे ही बढ़ता

(२)

जाता है एही अवस्था में पशुपति पुरुष को अज्ञान कर ई।
सोत (=स्रोतः=)निर्वासिगाभी नदी प्रणाल में जो अज्ञान
(= पड़ गया) है । *

कामं कामपालय यथा कामः समुध्यते ।
अथैनमपरा कामः क्षिप्रमंब प्रवाधते ॥

न्यायभाष्य १।१।१७

* वास्तु परिभाषिक शब्दा क निरुद्ध पालन्य फ लिय पुत्र-नया
की शब्दरूपी देखिय ।

(विपय-) भागको धम्मनकर दिया जा है वही उत्तम
गुरु है ।

वेत्तव्य (कदिरवणी) रेवध (धर)

१८ गामे वा यदि वा'रञ्ज्रे निन्ने य यदि वा धसे ।

यस्यारहस्तो विहरन्ति त भूमि रामखेम्यकं ॥१८॥

(ग्रामे वा यदि वाऽऽरये निम्न वा यदि वा स्थलं ।

यत्रार्हस्ता विहरन्ति सा भूमि रमणीया ॥१८॥)

अनुवाद—गाँवमें वा खंडमें विष्णु वा (ढँचे) स्थलमें वहाँ
(वहाँ) वहाँ (लोग) विहार करते हैं वही रमणीय
भूमि है ।

वेत्तव्य

आरख्यक भिष्

१९-रमणीयानि अरञ्जानि यत्थ न रमते जनो ।

वीतरागा रमिस्सन्ति न ते कामगवेसिनो ॥१९॥

(रमणीयान्यरण्यानि यत्र न रमते जनाः ।

वीतरागा रमन्ते न ते कामगवेषिणः ॥१९॥)

अनुवाद—(उत्त) रमणीय जल में वहाँ (साधारण) जब रमण वहाँ
करते, काम (भोगों) के पीछे न भ्रष्टमेवालो वीतरागा रमण
करेंगे ।

८--सहस्सवग्गो

वेणुवन

तम्बदाठिक (चोररघातक)

१००-सहस्समपि चे वाचा अनत्थपदसहिता ।

एकं अत्थपद सेय्यो यं सुत्त्वा उपसम्मति ॥१॥

(सहस्समपि चेद् वाचः अनर्थपदसहिताः ।

एकमर्थपदं श्रेयो यच्छुच्योपशाम्यति ॥१॥)

अनुवाद—व्यर्थ के पदों से युक्त सहस्रों वाक्यों से भी (वह) सार्थक एक पद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर शान्ति होती है ।

जेतवन

दारुचीरिय (थेर)

१०१-सहस्समपि चे गाथा अनत्थपदसहिता ।

एक गाथापद सेय्यो यं सुत्त्वा उपसम्मति ॥२॥

(सहस्समपि चेद् गाथा अनर्थपदसंहिता ।

एक गाथापदं श्रेयो यच्छुच्योपशाम्यति ॥२॥)

अनुवाद—व्यर्थ के पदों से युक्त हजार गाथाओं से भी एक गाथापद श्रेष्ठ है, जिसे सुनकर० ।

वेतवम

पुरव्ववेणी (वेरी)

१०२-यो घ गाथा सतं भासे धनत्थपवसहिता ।

एकं धम्मपदं सेम्यो यं सुत्वा उपसम्मात् ॥१॥

(यत्थ गाथासतं भापेतामर्थपदसंहितम् ।

एकं धर्मपदं अथो पच्छत्त्वोपश्रम्यति ॥ १ ॥)

१०३-यो सहस्स सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।

एकं च जेय्यमस्सामं स वे सङ्गामबुधामो ॥४॥

(या सहस्रं सहस्रं संग्रामे मानुषान् जयेत् ।

एकं च जयेद् आत्मानं स वै संग्रामक्षिपुत्तमः ॥ ४ ॥)

अनुवाद - जो धर्म के पदों से कुछ श्री गाथाओं भी साथ (उक्त)

धर्म का एक पद भी श्रेष्ठ है जिसे सुकर ॥ लगाम में

जो हजारों हजार मनुष्यों को जीत ले (उक्त) एक बन्ने

का जीतने वाला वहीं उत्तम संग्रामक्षिपु है ।

वेतवम

धम्म-पुच्छक भाष्य

१०४-असा हू वे जित सेम्यो या धायं इतरा पजा ।

असावन्तस्स पोसस्स निच्च सञ्जोतचारिनो ॥५॥

(आत्मा हू वै जितः श्रेयान् या धयमितरा मया ।

अन्तात्मना पुठपस्य निस्य संयतचारिणः ॥५॥)

१०५-नेव देवो न गम्भो न मारो सह यत्तना ।

जितं अपजितं कयिरा तथाक्कपस्स जन्तुनो ॥६॥

(नैव देवो न गन्धर्वो न मारः सह ब्रह्मणा ।
जितं अपजितं कुर्यात् तथारूपस्य जन्तो ॥६॥)

अनुवाद—इन अन्य प्रजाओके जीतनेकी अपेक्षा अपनेको जीतना श्रेष्ठ है। अपनेको दमन करनेवाला, नित्य अपनेको संयम करनेवाला जो पुरुष है। इस प्रकारके प्राणीके जीतेको, न देवता, न गन्धर्व, न ब्रह्मा सहित मार, बेजीता कर सकते हैं।

वेणुवन

सारिपुत्तके मामा

१०६—मासे मासे सहस्रेण यो यजेथ सत सम ।
एकञ्च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुत ॥७॥
(मासे मासे सहस्रेण यो यजेत शतं समान् ।
एकं च भावितात्मानं मुहूर्तमपि पूजयेत् ।
सैव पूजना श्रेयसी यच्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥७॥)

अनुवाद—सहस्र(-दक्षिण यज्ञ) से जो महीने महीने सौ वर्ष तक यजन करे, और यदि परिशुद्ध मनवाले एक (पुरुष) को एक मुहूर्त ही पूजा, तो सौ वर्ष के हवन से यह पूजा ही श्रेष्ठ है ,

वेणुवन

सारिपुत्त का भाजा

१०७—यो च वस्ससतं जन्तु अग्गिं परिचरे वने ।
एकं च भावितत्तानं मुहुत्तमपि पूजये ।
सा येव पूजना सेय्यो यं चे वस्ससतं हुत ॥८॥

(यश्च वर्षशतं जम्बुद्वीपं परिचरेद् वने ।
 एकं च भाषितात्मानं मुहूर्तमपि पृथगेत् ।
 सैव पूजना भ्येयसी यश्चेद् वर्षशतं हुतम् ॥८॥)

अनुवाद—बदि माषी सी वर्ष तक बर में अग्निपरिचरव (= अग्नि-
 होव) अरे और बदि ।

वेसुवन

सायिपुत्थम सिव मासव

१०८—य किंचिद्विदुषुत्थं च हुतं च लोके,
 सवच्छरं यश्चेत् पुण्यपेक्षतो ।
 सन्वम्पि त न चतुर्भागमेति,
 अग्निवाचना उज्जुगतेसु सेव्यो ॥९॥

(यत् किंचिद्दुषुत्थं च हुतं च लोकं,
 सवच्छरं यश्चेत् पुण्यपेक्षतः ।
 सर्वमपि तत् न चतुर्भागमेति,
 अग्निवाचना उज्जुगतेषु भ्येयसी ॥९॥)

अनुवाद—पुष्प की इच्छा से जो वर्ष भर मास मन्वर के बर और
 इवन को अरे, तो भी वह सारवता को मास (पुष्प)
 के विषे की गई अग्निवाचना के अनुयोग से भी अग्नि
 बरी है ।

आरवकुम्भी

दीवानु कुम्भर

१०९—अग्निवादनसोमस्त निवृत्तं वद्व्यापघापिनो ।
 अस्तारो धम्मा बडवस्ति आयु वप्सु सुख वसंत ॥१॥

(अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धापचायिनः ।

चत्वारि धर्मा वर्धन्ते आयुर्वर्णं सुखं वलम् ॥१०॥❀)

अनुवाद—जो अभिवादन शील है, जो सदा वृद्धों की सेवा करनेवाला है, उसकी चार बातें (= धर्म) बढ़ती हैं,—आयु, वर्ण सुख और बल ।

जेतवन

सकिच्च (= साकृत्य) सामणे

११०—यो च वस्ससत जीवे दुस्सीलो असमाहितो ।

एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तस्स भायिनो ॥११॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् दुःशीलोऽसमाहितः ।

एकाह जीवितं श्रेयः सीलवतो ध्यायित ॥११॥)

अनुवाद—दुराचारी और एकाग्रचित्ताविरहित (= असमाहित) के सौ वर्ष के जीने से भी सदाचारी और ध्यानी का एक दिन का जीवन श्रेष्ठ है ।

जेतवन

कोण्डन्न (थेर)

१११—यो च वस्ससत जीवे दुप्पञ्जो असमाहितो ।

एकाह जीवितं सेय्यो पञ्जावन्तस्स भायिनो ॥१२॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् दुष्प्रज्ञोऽसमाहिता ।

एकाह जीवितं श्रेयः प्रज्ञावतो ध्यायिन ॥१२॥)

❀ मनुस्मृति में है—“अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन, ।
चत्वारि सप्रवर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् (२।१२१)

अनुवाद—दुष्पुत्र और असमाहित के छौ बरष के बीचे छे मी प्यापन्
और प्यापी का एक दिन का बीचन भेड है ।

केतव्य

सप्तदश (बेर)

११२—यो च वस्तसत शीघ्रे कृसीतो निवीरियो ।
एकाह जीवितं सेम्यो वीरियमारभतो बभूव्हं ॥१३॥

(यश्च सप्तशतं जीवेत् कृसीदो हीनवीर्यः ।

एकाह जीवितं श्रेयो वीर्यमारभतो बभूव्हं ॥१३॥)

अनुवाद—साठसौ और अनुयागी के छौ बरष के बीचन छे एउ पयोष
करवेबाछे के बीचन का एक दिन भेड है ।

केतव्य

पचास (बेरी)

११३—यो च वस्तसत जीवे अपस्त उदयध्वय ।
एकाह जीवितं सेम्यो पस्ततो उदयध्वय ॥१४॥

(यश्च शतशतं जीवेद् अपश्यन् उदयध्वयम् ।

एकाह जीवितं श्रेयाः पश्यत उदयध्वयम् ॥१४॥)

अनुवाद—(संसार में बस्तुओं के) उत्पत्ति और विनाश का व
स्वाहा करने के छौ बरष के बीचन छे, उत्पत्ति और विनाश
का स्वाहा करवेबाछे बीचन का एक दिन भेड है ।

केतव्य

द्विवाणोत्तमी

११४—यो च वस्तसत जीवे अपस्तं जमतं परं ।
एकाह जीवितं सेम्यो पस्ततो जमतं परं ॥१५॥

(यश्च वर्षशतं जीवेद् अपश्यन् अमृतं पदम् ।
एकाहं जीवितं श्रेयः पश्यतोऽमृतं पदम् ॥१५॥)

अनुवाद—अमृतपद (= दुःखनिर्वाण) को न ख्याल करने के सौ वर्ष के जीवन से, अमृतपदको देखनेवाले जीवनका एक दिन श्रेष्ठ है ।

वेतवन

बहुपुत्तिका (थेरी)

११५—यो च वस्ससत जीवे अपस्स घम्ममुत्तम ।
एकाह जीवित सेय्यो पस्सतो घम्ममुत्तमं ॥१६॥

(यश्च वर्षशत जीवेद् अपश्यन् धर्ममुत्तमम् ।
एकाहं जीवित श्रेयः पश्यतो धर्ममुत्तमम् ॥१६॥)

अनुवाद—उत्तम धर्मको न देखने के सौ वर्षके जीवन से, उत्तम धर्म के देखनेवाले के जीवन का एक दिन श्रेष्ठ है ।

८—सहस्रवर्ग समाप्त

६—पापवग्गो

जेतवण

(चूच) एक्कत्ताठ्ठ (माग्गव्व)

११६—अमित्थरेत्थ कम्म्याणे पापा चित्त निवारये ।

बन्धं हि करोतो पुब्बं पापस्मिं रमते मना ॥१॥

(अमित्थरेत्थ कम्म्याणे पापात् चित्त निवारयेत् ।

तद्विषयं हि कुर्वताः पुंस्य पापे रमते मना ॥१॥)

अनुवाद—पुरुष (कर्मोन्मि) बन्धी करे, पापसे चित्तको निवारण करे
पुरुषको भीमी गतिसे करनेपर चित्त पापमें रत होने
बध्ता है ।

जेतवण

एक्कत्तक (वेर)

११७—पापञ्च पुरिसो कयिरा न सं कयिरा पुनप्पुनं ।

न तस्मिं छन्दं कयिराथ पुब्वसो पापस्स उच्चयो ॥२॥

(पापं श्वेत पुरुषाः कुर्यात् न तत् कुर्यात् पुनः पुनः ।

न तस्मिं छन्दं कुर्यात्, पुनः पापस्य उच्चयो ॥२॥)

अनुवाद—कवि पुरुष (कमी) पापकर करने तो उसे पुनः पुनः
न करे उक्तमें रत न होने, (कर्त्तव्य) पापकर प्रचय पुनः
(का करण) होता है ।

जेतवन

लाजदेवकी कन्या

११८-पुञ्जञ्चे पुरिसो कयिरा कयिराथेनं पुनपुनं ।
तम्हि छन्दं कयिराथ सुखो पुञ्जस्स उच्चयो ॥३॥

(पुण्यं चेत् पुरुष कुर्यात्, कुर्याद् एतत् पुन पुन. ।
तस्मि छन्दं कुर्यात् सुख. पुण्यस्य उच्चय ॥३॥)

अनुवाद—यदि पुरुष पुण्य करे तो, उसे पुन पुन. करे, उसमें रत होवे,
(क्योंकि) पुण्यका सचय सुखकर होता है ।

जेतवन

अनाथपिरिढक (सेठ)

११९-पापोपि पस्सति भद्र याव पापं न पच्चति ।
यदा च पच्चति पापं अथ पापानि पस्सति ॥४॥

(पापोऽपि पश्यति भद्रं यावत् पापं न पच्यते ।
यदा च पच्यते पापं अथ पापानि पश्यति ॥४॥)

१२०-भद्रोपि पस्सति पाप याव भद्रं न पच्चति ।
यदा च पच्चति भद्रं अथ भद्रानि पस्सति ॥५॥

(भद्रोऽपि पश्यति पापं यावद् भद्रं न पच्यते ।
यदा च पच्यते भद्रं अथ भद्राणि पश्यति ॥५॥)

अनुवाद—पापी भी तयतक भला ही देखता है, जबतक कि पापका
विपाक नहीं होता, जब पापका विपाक होता है; तब (उसे)
पाप दिखाई पड़ने लगता है। भद्र (पुण्य करनेवाला,
पुरुष) भी तयतक पापको देखता है 'जबतक कि पुण्यका

विपाक नहीं होने लगता, जब पुष्पक विपाक होने लगता है तो पुष्पको देखने लगता है ।

श्लोक

असंप्रसी (शिष्ट)

१२१—मायमञ्जेष पापस्त न मन्त आगमिस्सति ।
उद्विन्नुनिपातेन उद्वकुम्भोपि पूरति ।
वासो पूरति पापस्त थोक-थोकम्पि आचिनं ॥६॥

(माऽ धमम्येत पापं न मां तद् आगमिष्यति ।
उद्विन्नुनिपातेन उद्वकुम्भोऽपि पूर्यते ।
वास पूरयति पाप स्तोत्रं स्तोत्रमप्याचिन्वत् ॥६॥)

अनुवाद—“जब मेरे पास नहीं आया” ऐसा (सोच) पापकी अपराधना न करे । पापी को बुद्धके गिरने से घना धर जाता है (देखे ही) मूर्ख बोधा बोधा संभव करते पापको धर लेता है ।

श्लोक

विद्यावशात् (छेद)

१२२—मायमञ्जय पुञ्जस्त न मन्तं आगमिस्सति ।
उद्विन्नुनिपातेन उद्वकुम्भोपि पूरति ।
धीरा पूरति पुञ्जस्त थोक-थोकम्पि आचिनं ॥७॥

(माऽ धमम्येत पुञ्जं न मां तद् आगमिष्यति ।
उद्विन्नुनिपातेन उद्वकुम्भोऽपि पूर्यते ।
धीरा पूरयतिपुण्य स्तोत्रं स्तोत्रमप्याचिन्वत् ॥७॥)

अनुवाद—“वह मेरे पास नहीं आयेगा”—ऐसा (सोच) पुण्यकी अवहेलना न करे । पानी की० । घीर थोड़ा थोड़ा संचय करते पुण्य को भर लेता है ।

जेतवन

महाधन (वणिक)

१२३—वाणिजो 'व भय मगं अप्पसत्थो महद्धनो ।
विसं जीवितुकामो' व पापानि परिवज्जये ॥८॥

(वाणिगिव भयं मार्गं अल्पसार्थो महाधनः ।
विषं जीवितुकाम इव पापानि परिवर्जयेत् ॥८॥

अनुवाद—थोड़े काफिले और महाधनवाला दनजारा जैसे भययुक्त रास्ते को छोड़ देता है, (अथवा) जीने की इच्छावाला पुरुष जैसे विषको (छोड़ देता है), वैसे ही (पुरुष) पापों-को छोड़ दे ।

वेणुवन

कुक्कुटमिन्त

१२४—पाणिमिह चे वणो नास्स हरेय्य पाणिना विस ।
नाब्बरां विसमन्वेति नत्थि पापं अकुब्बतो ॥९॥

(पाणौ चेद वणो न स्याद हरेत् पाणिना विषम् ।
नाऽवराण विषमन्वेति, नास्ति पापं अकुर्वत ॥९॥)

अनुवाद—यदि हाथ में घाव न हो, तो हाथ से विष को ले ले (क्योंकि) घाव (= वण) -रहित (शरीर में) विष नहीं लगता; (इसी प्रकार) न करनेवाले को पाप नहीं लगता ।

केज्वर

श्लोक (कृष्णस्य शिष्यरी)

१२५—यो अप्यब्रुवत्तस्स नरस्स बुद्धसति ।
 सुद्धस्स पोसस्स धमङ्गुरास्स ।
 तमेव बालं पञ्चेति पाप,
 सुसुमो रथो पटिवातं 'ब सिस्तो ॥१०॥

(योऽल्पश्रुण्व्यप नरान बुध्यति
 सुखाय पुरुषायाऽनङ्गुराय ।
 तमेव बालं प्रत्येति पापं, सुसुमो
 रथः प्रतिवातमिव सिस्तम् ॥१०॥)

अनुवाद—जो दोपरहित हृदय निर्माह पुरुष को दोष लगाता है, जहाँ
 अङ्गुरो (उरुका) पाप कीवन्त लगाता है (जैसे कि)
 सुसुम शुकुलम हवा के जाने के लक्ष फेंकने से (यह फेंकने वाले
 पर पत्नी है) ।

केज्वर

(माशिक्यच्छाया) सिस्त (बेर)

१२६—गमभमेके उत्पज्जन्ति निरयं पापकम्मिनो ।
 सगं सुगतिनो यस्ति, परिनिब्बन्ति घनासवा ॥११॥

(गर्भमेक उत्पज्जन्त निरयं पापकम्मिणः ।
 स्वर्गं सुगतयो यस्ति परिनिर्वाण्यनासवाः ॥११॥)

अनुवाद—कोई (पुरुष) गर्भ में उत्पन्न होते हैं (कोई) पाप-
 कर्मां नरक में (जाते हैं) कोई (सुप्रतिपाद्ये (पुरुष)
 स्वर्ग को जाते हैं, (और चित्त के) मर्कों से रहित (पुरुष)
 निर्वाण को प्राप्त होते हैं ।

जेतवन

तीन भिच्छु

१२७—न अन्तलिकखे न समुद्दमज्जे

न पब्बतानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेसो

यत्थट्ठितो मुज्जेय्य पापकम्मा ॥१२॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये

न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।

न विद्यते स जगति प्रदेशो

यत्रस्थितो मुच्येत पापकर्मणः ॥१२॥)

अनुवाद—न आकाशमें न समुद्रके मध्यमें न पर्वतोंके विवरमें प्रवेश कर—संसारमें कोई स्थान नहीं है, जहाँ रहकर—पाप कर्मोंके (फलसे) (प्राणी) बच सके ।

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम)

सुप्पबुद्ध (शाक्य)

१२८—न अन्तलिकखे न समुद्दमज्जे

न पब्बतानं विवरं पविस्स ।

न विज्जती सो जगतिप्पदेसो

यत्थट्ठितं न प्पसहेय्य मच्चू ॥१३॥

(नान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये

न पर्वतानां विवरं प्रविश्य ।

न विद्यते स जगति प्रदेशो

यत्रस्थित न प्रसहेत मृत्यु ॥१३॥)

अनुवाद—न आकाश में—जहाँ रहनेवालेको मृत्यु न सतावे ।

६—पापवर्ग समाप्त

१०—दण्डवर्गो

श्लोक

कण्डविक्रम (भिष्णु)

१२९—सर्वे तसस्ति वण्डस्त सर्वे भायन्ति मन्वृणो ।
अज्ञान उपमं कृत्वा न हनेम्य न घातये ॥१॥

(सर्वे बस्यन्ति दण्डात् सर्वे विभ्यति मृत्योः ।
अज्ञानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥१॥)

अनुवाद—दण्डके सभी डरते हैं मृत्युके सभी घबराते हैं, अपने
अज्ञान (इन बातोंको) जाबकर न मारे न मारनेकी
श्रेयश करे ।

श्लोक

(कण्डविक्रम (भिष्णु))

१३०—सर्वे तसस्ति वण्डस्त सर्वेस जीवित प्रियम् ।
अज्ञान उपमं कृत्वा न हनेम्य न घातये ॥२॥

(सर्वे बस्यन्ति दण्डात् सर्वेषां जीवित प्रियम् ।
अज्ञानं उपमां कृत्वा न हन्यात् न घातयेत् ॥२॥)

अनुवाद—सभी दण्डके डरते हैं, सबको जीवित प्रिय है (इच्छे)
अपने अज्ञान जाबकर न मारे न मारनेकी श्रेयश करे ।

चेतवन

बहुतसे लड़के

१३१—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥३॥

(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न विहिनस्ति ।
आत्मन सुखमन्विष्य प्रेत्य स न लभते सुखम् ॥३॥)

१३२—सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो लभते सुख ॥४॥

(सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन न हिंसति ।
आत्मन सुखमन्विष्य प्रेत्य स लभते सुखम् ॥४॥)

अनुवाद—सुख चाहनेवाले प्राणियोंको, अपने सुख की चाहसे जो दण्ड से मारता है, वह मरकर सुख नहीं पाता । सुख चाहनेवाले प्राणियोंको, अपने सुख की चाहसे जो दण्डसे नहीं मारता, वह मरकर सुखको प्राप्त होता है ।

चेतवन

कृष्णघान (थेर)

१३३—मा वोच परुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्यु तं ।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्यु तं ॥५॥

(मा वोच परुषं किञ्चिद् उक्ता प्रतिवदेयुस्त्वाम् ।
दुःखा हि संरम्भकथा प्रतिदण्डा स्पृशेयुस्त्वाम् ॥५॥)

१३४—स चे नेरेसि अत्तानं कंसो उपसतो यथा ।
एस पत्तोसि निब्बाणं सारम्भो ते न विज्जति ॥६॥

(स चेत् नेरयसि आत्मानं कास्मिमुपहृतं यथा ।
एष प्राप्तोऽसि निर्घाणं संरम्मत्तं न विद्यते ॥१॥)

अनुवाद—कठोर बचन न बोको। बोखबेपर (दूसरे जी जैसे ही) तुम्हें बोखेये बुर्बन हुणदायक (होते हैं) (बोखबस) बदलेमें तुम्हें बचन मिलेगा। दूय कसा जैसे पिःःः रहता है, (जैसे) यदि तुम अपबेको (निःःः रनको) तो तुम्हने निर्घाणको पाखिना तुम्हारे जिने कबह (=हिंसा) नहीं रही।

आकली (पुंराम) विसाखा आदि (व्यासिअने)

१३५—यथा वण्डेन गोपालो गावो पाचेति गोधरं ।

एव अरा च मन्बू च प्रायु पाचेन्ति पाणिनं ॥७॥

(यथा वण्डेन गोपालो गाः प्राचयति गोधरम् ।
एवं अरा च मृत्युभ्यायुः प्राचयतः प्राणिनाम् ॥७॥)

अनुवाद—जैसे आका बाटीसे पाबोंको बरागाहमें खे जाता है, जैसे ही दुआपा जीर मृत्यु प्राणियोंकी भापुको खे जाते हैं।

राजगृह (बेडरव)

अन्तर (मेठ)

१३६—अथ पापानि कम्मनि कर धालो न भुवन्ति ।

सेहि कम्मेहि बुम्मेधो अग्गिबद्धो 'व तप्यति ॥८॥

अथ पापानि कमाणि कुर्बन् धालो न युष्यत ।
खे कम्मि तुम्मेधा अग्निदग्ध इव तप्यते ॥८॥

अनुवाद—पाप कर्म करत बच मूठ (पुख उखे) नहीं बुकता पीके

दुर्बुद्धि अपने ही कर्मोंके कारण आगसे जलेकी भाँति अनुताप करता है ।

राजगृह (वेणुवन)

महामोगलान (थेर)

१३७—यो दण्डेन अदण्डेषु अल्पदुदृठेषु दुस्सति ।

दसन्नमञ्जतरं ठानं खिप्पमेव निगच्छति ॥९॥

(यो दण्डेनादण्डेष्वप्रदुष्टेषु दुष्यति ।

दशानामन्यतमं स्थानं क्षिप्पमेव निगच्छति ॥९॥)

१३८—वेदनं फरुसं जानिं सरीरस्स च भेदन ।

गुरुकं वापि आबाधं चित्तक्खेपं व पापुणो ॥१०॥

(वेदना परुषां ज्यानिं शरीरस्य च भेदनम् ।

गुरुकं वाऽप्याबाधं चित्तक्षेपं वा प्राप्नुयात् ॥१०॥)

१३९—राजतो वा उपस्सग्ग अब्भक्खान व दाहणं ।

परिक्खय व जातीनं भोगानं व पभङ्गणं ॥११॥

(राजतो वोपसर्गमभ्याख्यानं वा दाहणम् ।

परिक्षयं वा ज्ञातीनां भोगानां वा प्रभजनम् ॥११॥)

१४०—अथवस्स अगारानि अग्गी उहति पावको ।

कायस्स भेदा दुप्पञ्जो निरय सोपपज्जति ॥१२॥

(अथवाऽस्यागाराण्यग्निर्दहति पावक ।

कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञो निरयं स उपपद्यते ॥१२॥)

अनुवाद—जो दृग्दरहितों को दृग्दसे (पीड़ित करता है), निर्दोषोंको दोष लगाता है, वह शीघ्र ही इन स्थानोंमेंसे एक को प्राप्त

होता है। कङ्कणी वेदवा हाणि अण्ण म्मा होमा म्माटी
 बीमारी, (पा) चित्तविशेष (= पाण्ड) को प्राप्त होता
 है। वा राजासे इच्छको (प्राप्त होता है ।) चारुण
 मित्ता अति बन्धुओंका विचार, योगोंकर कथ्य अण्ण
 उसके घरको अग्नि = पाण्ड अण्णता है; अथा बोद्धेपर
 यह पुर्वदि कर्मों अण्ण होता है।

केतव

बहुपठिक (मित्)

१४१—न नग्गधरिया न अट्टा न पञ्जा

नानासका पण्डिलसायिका वा ।

रसोयजस्त उक्कुटिकप्पघाम

सोधेन्ति मत्तं अवितिष्णुकत्तम् ॥१३॥

(न नग्गधरियां न अट्टा न पञ्जां

नाऽनगतं स्थण्डिलसायिकां वा ।

रसोयजस्य उक्कुटिकप्रधानं

सोधयन्ति मत्तं अवितीर्याकांसुम् ॥१३॥)

अनुवाद—जिस पुण्डरी अकारणार्थे समाप्त नहीं हो गई, उस मनुष्य
 की शुद्धि, न जो रहनेसे न अण्णसे न पञ्जा (अण्णसे) से,
 न अण्ण (= उपवास) करनेसे न कङ्कणी धूमिपर सोने से,
 न पूजा अण्णसे से न पञ्जां अण्णसे होती है।

केतव

अन्तति (महामाण)

१४२—असङ्कतो चेपि समं धरेम्य

सन्तो वन्तो नियतो बह्वचारी ।

सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं
सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खू ॥१४॥

(अलंकृतश्चेदपि शमं चरेत्
शान्तो दान्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डं
स ब्राह्मणः स श्रमणः स भिक्षुः ॥१४॥)

अनुवाद—अलंकृत रहते भी यदि वह शान्त, दान्त, नियमतत्पर, ब्रह्म-
चारी सारे प्राणियों के प्रति दंडत्यागी है, तो वही ब्राह्मण
है, वही श्रमण (= संन्यासी) वही भिक्षु है ।

वेतवन

पिलोतिक (थेर)

१४३—हरीनिसेधो पुरिसो कोचि लोकस्मिं विज्जति ।

यो निन्दं अप्पबोधति अस्सो भद्दो कसामिव ॥१५॥

(ह्रीनिषेधः पुरुषः कश्चित् लोके विद्यते ।

यो निन्दा न प्रबुध्यति अश्वो भद्रः कशामिव ॥१५॥)

अनुवाद—लोक में कोई पुरुष होते हैं; जो (अपने ही) लज्जा करके
निषिद्ध (कर्म) को नहीं करते, जैसे उत्तम घोड़ा कोड़े
को नहीं सह सकता, वैसे ही वह निन्दा को नहीं सह सके ।

१४४—अस्सो यथा भद्दो कसानिविट्ठो

आतापिनो संवेगिनो भवाथ ।

सद्धाय सीलेन च वीरियेन च

समाधिना धम्मविनिच्छयेन च ।

सम्यग्प्रविज्जाचरणा पतिस्तता
पहस्समा बुक्खमिदं अनप्यकं ॥१६॥

(अस्वो यथा मद्रः कृशानिषिष्ट
आतापिनः सधिगिना भवत ।
अद्रया शीलन च वीर्येण च
समाधिना धर्मयिनिश्चयेन च ।
सम्यग्प्रविजाचरणा प्रतिस्मृता
प्रहास्यथ बुक्खमिदं अनप्यकम् ॥१६॥)

अनुवाद—कोड़े पड़े उच्चम पाड़े की भाँति उद्योगी, आत्मिक
(वेगवान्) हो; अद्रया आचार पीर्यं, समाधि, और धर्म-
विरथ्य च पुक्क (बन) विद्या और आचार्य से
समन्वित हो शीघ्रकर इस महान् बुद्ध (शक्ति) का शर
कर सकते हो ।

१४५—उबक हि नयन्ति मत्तिका
उसुकारा नमयन्ति तेजमं ।
वाच नमयन्ति तच्छकका
अस्तानं वमयन्ति सुम्बता ॥१७॥

(उबकं हि नयन्ति नेतृका, ह्युकारा नमयन्ति तेजमम् ।
वाच नमयन्ति तच्छकका आत्मानं वमयन्ति सुम्बता ॥१७॥)

अनुवाद—नहरवाले पानी से करते हैं वाच नमाने वाले वाच को मीक
करते हैं वरुई शकनी को मीक करते हैं सुम्बर नरवाले
अपने को दमन करते हैं ।

१०—इन्द्रवर्ग समाप्त

११—जरावग्गो

जेतवन

विसाखा की संगिनी

१४६—को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति ।
अन्धकारेण ओनद्धा पदीपं न गवेस्सथ ॥१॥

(को नु हासः क आनन्दो नित्यं प्रज्वलिते सति ।
अन्धकारेणाऽवनद्धा. प्रदीपं न गवेपयथ ॥१॥)

अनुवाद—जब नित्य ही (आग) जल रही हो, तो क्या हँसी है,
क्या आनन्द है ? अंधकार में विरे तुम दीपक को (क्यों)
नहीं झूँटते हों ?

राजगृह (वेणुवन)

सिरिमा

१४७—पस्स चित्तकतं विम्बं अरुकायं समुत्तितं ।
आतुरं बहुसङ्कल्पं यस्स नत्थि ध्रुवं ठिति ॥२॥

(पश्य चित्तीकृतं विम्बं अरु-कायं समुच्छ्रितम् ।
आतुरं बहुसंकल्पं यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः ॥२॥)

अनुवाद—बेचो विचित्र शरीर को जो बच्चोंसे कुछ, पूजा, पीकि
 भाव संकल्पों से कुछ है, जिसकी स्थिति अनिष्ट है।

श्लोक

वचरी (बेरी)

१४८—परिस्त्रिष्यमिदं रूपं रोगनिष्ठं पञ्चकूरं ।
 भिज्जती पूतिसन्वेहो मरणात्तं हि जीवितं ॥३॥

(परिस्त्रिष्यमिदं रूपं रोगनिष्ठं पञ्चकूरम् ।
 भिज्जते पूतिसन्वेहो मरणात्तं हि जीवितम् ॥३॥)

अनुवाद—यह रूप बीब-बीब, रोम का बर, और संशुभ है, यह वह
 देह मज्ज होती है, जीवन मरणात्त को छूटा।

श्लोक

अभिमान (मिच्छ)

१४९—यानिमानि अपत्यानि अलाबूनेव सारवे ।
 कापोतकानि अट्ठीनि तानि बिस्वान का रति ॥४॥

(यानिमान्यपत्याम्यलाबूनीव शरदि ।
 कापोतकान्यस्थीनि तानि बिस्वा का रति ॥४॥)

अनुवाद—यह काकनी अपत्य 'छोटी' की मति (कंकरी पई),
 या कपूरों की सी (सन्वे हो पई) इतियों को देखकर
 किन्तु इह (शरीर में) वेम होय ?

श्लोक

रूपव्या (बेरी)

१५०—अट्ठीनं नगरं कृतं मसलोहितलेपनं ।
 यत्प जराद्य मञ्जुषु च मामो मञ्जुषु च प्रोहितो ॥५॥

(अस्थनां नगरं कृतं मासलोहितलेपनम् ।
यत्र जरा च मृत्युश्च मानो भ्रक्षश्चावहितः ॥५॥)

अनुवाद—दृष्टियों का (एक) नगर बनाया गया है, जो मास और रक्त से लेपा गया है, जिस में जरा और मृत्यु, अभिमान और ढाह छिपे हुये हैं ।

जेतवन

मल्लिका देवी

१५१-जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता
अथो सरीरमपि जरं उपेति ।
सतं च घम्मो न जरं उपेति
सन्तो ह वै सन्निभ प्रवेदयन्ति ॥६॥

(जीर्यन्ति वैराजरथाः सुचित्रा अथ शरीरमपि जरामुपेति ।
सतांच घर्मो न जरामुपेति सन्तो ह वै सद्भयः प्रवेदयन्ति ॥६॥)

अनुवाद—सुचित्रित राजरथ भी पुराने हो जाते हैं, और शरीर भी जराको प्राप्त होता है, (किन्तु) सज्जनो का धर्म (=गुण) जरा को नहीं प्राप्त होता, सन्त जन सत्यपुरुषों के बारे में ऐसा ही कहते हैं ।

जेतवन

(काल) उदायी (धेर)

१५२-अल्पस्सुतायं पुरिसो बलिवद्दो'व जीरति ।
मंसानि तस्स बड्ढन्ति पञ्जा तस्स न बड्ढति ॥७॥
(अल्पश्रुतोऽयं पुरुषो बलीवर्द इव जीर्यति ।
मासानि तस्य बर्द्धन्ते प्रज्ञा तस्य न बर्द्धते ॥७॥)

अनुवाद—अस्वमुत्त (= अज्ञानी) पुत्रप नैव की मति जीर्ण होता है
अस्व मंस ही बरता है प्रजा नहीं बरती ।

१५३—अनेकजातिसंसार सन्धाविस्सं अनिच्चिसं ।

गृहकारकं गवेसन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुत्त ॥ ८ ॥

(अनेकजातिसंसारं समधाविपं अनिचिसंसाः ।
गृहकारकं गवेसन्तो, दुःखा जातिः पुनः पुनः ॥ ८ ॥)

१५४—महकारक ! विटठोसि पुन येह न काहसि ।

सब्बा ते फासुक्का भग्गा गृहकूट विसत्थित्तं ।

विसत्थारगतं चित्तं तण्हान अयमज्जगा ॥ ९ ॥

(गृहकारक, इष्टोऽसि पुनर्गेहं न करिष्यसि ।

सवास्ते पार्श्विक्य भग्गा गृहकूटं विसंस्कृतम् ।

विसंस्कारगतं चित्तं तण्हाणां अयमज्जगात् ॥ ९ ॥)

अनुवाद—बिधा के अनेक कर्मों तक संसार में हीरता रहा । (इस
अथा स्त्री) कोठी के बनाये बाड़े (= गृहकारक) के
कोठे पुनः पुनः दुःख (-मय) कर्म में पड़ता रहा । हे
गृहकारक ! (अब) मुझे पहिचान बिधा (अब)
किर नू चर नहीं क्या संकेता । (तेरी सभी कविर्वा मय ही
गयीं गृह का निवार भी निर्बन्ध हो गया । संस्कार-रहित
चित्त से तुम्हा का कर्म हो गया ।

धाराबधी (अधिपतय)

महाबनी केम्प पुत्र

१५५—अचरिस्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योक्खने धनं ।

जिण्णुक्कोघा'ध क्खायन्ति सीलामच्छे'ध पत्तने ॥ १० ॥

(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।
जीर्णक्रौंच इव क्षीयन्ते क्षीणमत्स्य इव पल्वले ॥१०॥)

१५६—अचरित्वा ब्रह्मचरिय अलद्धा योव्वणे धनं ।
सेन्ति चापातिखीणा'व पुराणानि अनुत्थुन ॥११॥

(अचरित्वा ब्रह्मचर्यं अलब्ध्वा यौवने धनम् ।
शेरते चापोऽतिक्षीण इव पुराणान्यनुतन्वन्त. ॥११॥)

अनुवाद—ब्रह्मचर्य को बिना पालन किये, जवानों में धनको बिना कमाये, (पुरुष) मत्स्यहीन जलाशय में वृद्धे क्रौंच पक्षी से जान पड़ते हैं ।

११—जरावर्ग समाप्त

१२—अत्तवग्गो

सुसुमार (सुमार) गिति (भेदक्यात्मक)

बोधि एवमुत्तर

१५७—अस्तान्ने वे पिय बळ्ळा एवसेम्य तं सुरक्खित्तं ।
सिण्णामञ्जतर याम पटिज्जग्गेम्य पण्डितो ॥१॥

(आत्मानं खेतुं प्रियं जानीत्याद् रक्षेत् सुरक्षितम् ।
अथायामन्वतमं यामं प्रतिआणुयात् पण्डितः ॥१॥)

अनुवाद—अपने को यदि प्रिय समझ ही तो अपने को सुरक्षित
रक्षना चाहिये, पण्डित (ज्ञान) (एतके) हीर्षो धर्मो
(= बहर्षो) में से एक में आयाव करें ।

केतवण

(एवमुत्तर) उपलब्ध (बेर)

१५८—अस्तान्ने एव पठम पटिज्जपे निवेशये ।
अथञ्जमनुसासेम्य न कित्तिस्सेम्य पण्डितो ॥२॥

(आत्मानमथ प्रथमं प्रतिरूप निवेशयेत् ।
अथान्यमनुशिष्यात् न कित्तिश्येत् पण्डितः ॥२॥)

अनुवाद—पहिले अपने को ही उचित (काम) में लगावे, (फिर)
यदि दूसरे को उपदेश करे, (तो) पंडित क्लेश को न
प्राप्त होगा ।

जेतवन

(अभ्यासी) तिस्स (थेर)

१६६-अत्तानञ्चे तथा कयिरा यथञ्जमनुसासति ।

सुदन्तोवत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥३॥

आत्मानं चेत् तथा कुर्याद् यथाऽन्यमनुशास्ति ।

सुदान्तो वत दमयेद्, आत्मा हि किल दुर्दमः ॥३॥)

अनुवाद—अपने को वैसा बनावे, जैसा दूसरे को अनुशासन करना है;
(पहिले) अपने को भली प्रकार दमन करे, वस्तुतः अपने
को दमन करना (ही) कठिन है ।

जेतवन

कुमार कस्सपकी माता (थेरी)

१६०-अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।

अत्तना'व सुदन्तेन नाथ लभति दुल्लभं ॥४॥

(आत्मा^१ हि आत्मनो नाथ. को हि नाथ. परः स्यात् ।

आत्मनैव सुदान्तेन नाथं लभते दुर्लभम् ॥४॥)

१. भगवद्गीता (अध्याय ६) में

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥४॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।

अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥५॥”

अनुवाद—(पुरुष) अपने ही अपने मायिक है, दूसरा कब मायिक हो सकता है। अपने का भली प्रकार इमन कर देने पर (वह एक) दुर्लभ मायिक का पाता है ।

अथवा

महाकाव्य (उपासक)

१६१—अत्तनायं फलं पापं अत्तञ्च अत्तसम्भवं ।
अभिमयति दुस्मेध वजिर 'व' स्ममयं मणिए ॥५॥

(आत्मनीय कृत पापं आत्मञ्च आत्मसम्भवम् ।

अभिमयति दुस्मेधस्तं वज्रमिवास्ममयं मणिए ॥५॥)

अनुवाद—अपने से पाठ, अपनेसे उत्पन्न अपने से किया पाप (करने-वाले) दुर्बुद्धि को पापायमय वज्रमणिधरे (चोटधरे) मणि मन्थन (= पीकित) करता है ।

अथवा

अथवा

१६२—यस्तच्चवन्तबुस्सोऽस्यं मालुवा साल्लमिवात्तत्त ।
करोति सो सथत्तान यथा' मं इच्छन्ती विसो ॥६॥

(यस्याऽऽत्यन्तदौर्धीस्य मालुवा साल्लमिवात्तत्तम् ।

करोति स तथात्मानं यथैनमिच्छन्ति द्विपा ॥६॥)

अनुवाद—मालुवावृक्षाः से रोष्ठि काष्ठ (दृष्ट) की मणि क्लिप्त वृक्षा-वार जैसा, बुद्धा है। वह अपने को वैसा ही कर लेता है, वैसा कि उत्पन्न अनु चाहते हैं ।

१ मालुवा एक खटा है जो अति दृष्ट पर पड़ती है; जहाँ में पानी के मार से मारी हो उस छोड़ जाती है ।

राजगृह (वेष्टवन)

संघमें फूटके समय

१६३—सुकरानि असाधूनि अत्तनो अहितानि च ।

यं वे हितञ्च साधुञ्च तं वे परमदुक्करं ॥७॥

(सुकराण्यसाधून्यात्मनोऽहितानि च ।

यद् वै हितं च साधु च तद् वै परमदुष्करम् ॥७॥

अनुवाद—अनुचित और अपने लिये अहित (कर्मों का करना)
सुकर है, (लेकिन) जो हित और उचित है; उसका करना
परम दुष्कर है ।

जेतवन

काल (धेर)

१६४—यो सासन अरहतं अरियानं धम्मजीविनं ।

पटिक्कोसति दुम्मेधो दिट्ठिं निस्साय पापिकं ।

फलानि कट्ठकस्सेव अत्तहञ्जाय फुल्लति ॥८॥

(यः शासनमर्हता आर्याणां धर्मजीविनाम् ।

प्रतिक्रुश्यति दुर्मेधा दृष्टिं निःश्रित्य पापिकाम् ।

फलानि काष्ठकस्यैवात्महत्यायै फुल्लति ॥८॥)

अनुवाद—धर्मजीवी, आर्य, अर्हतों के शासन (= धर्म) को, जो दुर्बुद्धि
बुरी दृष्टि से निन्दता है, वह बाँस के फल की भाँति अपनी
हत्या के लिये फूलता है ।

जेतवन

(चूल) काल (उपासक)

१६५—अत्तना' व कतं पाप अत्तना संकिलिस्सति ।

अत्तना अकत पापं अत्तना'व विसुज्झति ॥

सुद्धि असुद्धिपच्चत्तं नञ्जो अञ्जं विसोधये ॥९॥

(आत्मनैव कृतां पापं आत्मना संप्लितस्यति ।
 आत्मनाऽकृतां पापं आत्मनैव विशुध्यति ।
 शुद्ध-अशुद्धी प्रत्यात्म नाऽभ्योऽन्यं विशोधयेत् ॥६॥)

अनुवाद—अपने से किया पाप अपने को ही मलिन करता है अपने
 पाप व करे तो अपने ही शुद्ध रहता है। शुद्धि अशुद्धि मल्लेक
 (आदमी) की अखण्ड अखण्ड है। दूसरा (आदमी) दूसरे को
 शुद्ध नहीं कर सकता ।

वेतव्य

अच्छत्य (वेर)

१६६—अत्तवत्त्वं परत्वेन बहुनाऽपि न हापये ।
 असावत्समभिः प्राय सवत्सपसुतो सिषा ॥१०॥
 (आत्मनोऽर्थं परार्थेन बहुनाऽपि न हापयेत् ।
 आत्मनोऽर्थमभिधाय सवर्धमसिताः स्यात् ॥१॥)

अनुवाद—प्राये के बहुत हित के लिये भी अपने हित की हानि न करे;
 अपने हित को जान कर अपने हित में लगे ।

१२-आत्मवर्ग समाप्त

१३—लोकवग्गो

वेत्तवन

कोद्धं पत्तपवयस्क भिञ्जु

१६७—हीन धम्मं न सेवेय्य, प्रमादेन न संवसे ।

मिच्छार्दिट्ठि न सेवेय्य न सिया लोक-बड्ढनो ॥१॥

(हीनं धर्मं न सेवेत, प्रमादेन न संवसेत् ।

मिथ्यादृष्टि न सेवेत, न स्यात् लोकवर्द्धनः ॥१॥)

अनुवाद—पाप (= नीच'धर्म) को न सेवन करे, न प्रमाद से लिप्त
होवे, झूठी धारणा को न सेवन करे, (आदमीको) लोक्-
(= जन्म मरण) वर्द्धक नहीं बनना चाहिए ।

कपिलवस्तु (न्यग्रोधाराम)

सुद्धोदन

१६८—उत्तिट्ठे नप्पमज्जेय्य धम्मं सुचरितं चरे ।

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परमिह च ॥२॥

(उत्तिष्ठेत् न प्रमाद्येद् धर्मं सुचरितं चरेत् ।

धर्मचारी सुखं शैतेऽस्मिं लोके परत्र च ॥२॥)

१६९—धम्मं चरे सुचरितं न तं दुच्चरितं चरे ।

धम्मचारी सुखं सेति अस्मिं लोके परमिह च ॥३॥